सुदामा पाण्डेय 'धूमिल'

डॉ. रमेश प्रताप सिंह



उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ

सुदामा पाण्डेय 'धूमिल'

सुदामा पाण्डेय 'धूमिल'

लेखक
डॉ० रमेश प्रताप सिंह
असिस्टेन्ट प्रोफेसर
स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग
श्री जे० एन० पी० जी० कालेज,
लखनऊ

उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान
(स्मृति संरक्षण योजना)
राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन हिन्दी भवन
6, महात्मा गांधी मार्ग, हजरतगंज, लखनऊ

प्रकाशक :
मनीष शुक्ल
निदेशक
उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान
लखनऊ

स्मृति संरक्षण योजना के अन्तर्गत प्रकाशित।

ग्रन्थमाला संख्या : 28

प्रथम संस्करण : 2016

ISBN : 978-93-82175-75-9

प्रतियाँ : 500

मूल्य : ₹ 155=00 (एक सौ पचपन रुपये मात्र)

मुद्रक
रोहिताश्व प्रिण्टर्स
268, ऐशबाग रोड, लखनऊ
फोन : 2692973

आधुनिक हिन्दी कविता के मर्मज्ञ,

साहित्य चिन्तक गुरुवर

डॉ0 कमला शंकर त्रिपाठी

को

सादर . . .

प्रकाशकीय

हिन्दी कविता के यदि सर्वप्रमुख गुण की चर्चा की जाए, तो वह है उसकी विविधता। जीवन का कोई भी रंग ऐसा नहीं है, जो उसमें न दिखता हो। यहाँ तक कि शिल्पगत विविधता भी उसकी अमूल्य धरोहर है। कहीं छंद, कहीं दोहा, कहीं गीत, कहीं अतुकांत और कहीं समय-सरोकारों के साथ खड़े रहने के लिए शिल्प को भी पीछे छोड़ती सपाटबयानी या वक्तव्य सरीखी कविता। एक ओर परम्परा से भरपूर लगाव तो दूसरी ओर प्रयोगधर्मिता भी उसकी विशिष्ट पूंजी है। ऐसे अनेकानेक प्रयोगों के बीच वर्गीय हितों के साथ खड़ी प्रतिबद्ध परम्परा के सशक्त हस्ताक्षर हैं स्वर्गीय सुदामा पाण्डेय 'धूमिल'।

हिन्दी साहित्यसेवी डॉ. रमेश प्रताप सिंह ने उनके समूचे व्यक्तित्व को इस पुस्तक 'सुदामा पाण्डेय 'धूमिल' में जिस व्यवस्थित ढंग से शब्द दिये हैं, उससे उनके जटिल व्यक्तित्व को आसानी से समझा जा सकता है। पूरी पुस्तक सात अध्यायों में विस्तारित है - जीवनवृत, कृतित्व परिचय, आधुनिकता बोध और धूमिल, धूमिल के काव्य की विषयवस्तु, धूमिल का काव्य शिल्प, पटकथा के बहाने लम्बी कविता की पड़ताल और उपसंहार। अंत में संदर्भ ग्रंथों का उल्लेख पुस्तक सामग्री को और अधिक तथ्यपरक बनाता है। उत्तर प्रदेश के एक अत्यन्त पिछड़े क्षेत्र पाण्डे का पुरवा, वाराणसी में जन्में श्री धूमिल ने सिर्फ 39 वर्षों का जीवन जिया, पर उनकी कविता के प्रतिबद्ध सरोकार अपनी उपमा आप हैं। उनके निकट कविता साहित्य की पूंजी ही नहीं, शोषित-पीड़ित आदमी की आवाज बन जाती है। यों तो उनके जीवनकाल में उनका सिर्फ एक ही काव्य संग्रह 'संसद से सड़क तक' प्रकाशित हो सका था (दो - 'कल सुनना मुझे' और 'सुदामा पाण्डेय का प्रजातंत्र' - बाद में आये) परन्तु हिन्दी कविता में धूमिल को स्थापित करने के लिए यह अकेला संकलन ही काफी था। इस संग्रह की यह पंक्तियाँ हर किसी को झकझोरने की क्षमता रखती हैं - 'एक आदमी रोटी बेलता है/एक आदमी रोटी खाता है/एक तीसरा आदमी भी है/जो न रोटी बेलता है/न रोटी खाता है/वह सिर्फ रोटी से खेलता है/मैं पूछता हूँ - यह तीसरा आदमी कौन है/मेरे देश की संसद मौन है।' आज समाज में जैसी विसंगतियाँ बढ़ रही हैं, उनके प्रति ऐसी कविताएँ हमें और अधिक जागरूक बनाती हैं। जनतंत्र के साथ बढ़ रहे उपहासों के खिलाफ धूमिल इस कदर निर्मम हैं कि अनेक अवसरों पर इस पर भी सवाल उठाये बिना नहीं रहते। मसलन - 'दरअसल, अपने यहाँ जनतंत्र/एक ऐसा तमाशा है/जिसकी जान/मदारी की भाषा है।' धूमिल ने प्रबंध काव्य

की तर्ज पर अनेक लम्बी कविताएँ भी लिखीं। इनमें समाज विशेष कर आम आदमी और गंवई-गाँव से जुड़े परिवेश को शब्द देते 'कोलाज' देखते-पढ़ते ही बनते हैं - जीवंत, प्रतिबद्ध और संघर्षरत !

उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान अपनी स्मृति संरक्षण योजना के अन्तर्गत इसका प्रकाशन कर गौरवान्वित है। डॉ. रमेश प्रताप सिंह हिन्दी साहित्य के निष्णात विद्वान हैं और इस पुस्तक सुदामा पाण्डेय 'धूमिल' के प्रणयन के लिए उन्होंने जो अकथनीय श्रम किया है, उनके समूचे व्यक्तित्व को संक्षेप में व्यवस्थित रूप दिया है, सारगर्भित प्रस्तुति से इसे विशिष्ट पहचान दी है, उसके प्रति हम उनके विशेष आभारी हैं। आशा है, भविष्य में भी उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान को उनका ऐसा ही सहयोग मिलता रहेगा। जहाँ तक हिन्दी साहित्य के अध्येताओं और जागरूक पाठकों का सन्दर्भ है, विश्वास है कि उनके बीच भी यह पुस्तक सुदामा पाण्डेय 'धूमिल' सराहना पायेगी, अपनी उपादेयता सिद्ध करेगी।

मनीष शुक्ल
निदेशक

निवेदन

मनुष्य का अब तक का विकास शायद ही यह ऊंचाइयां छू पाता, यदि उसमें करुणा, प्रेम, अहिंसा और भाईचारे जैसे मानवीय गुण न होते। सत्य की खोज और उसे स्थापित करने के प्रति अटूट आग्रह न होता। करुणा और प्रेम जैसे शाश्वत मूल्यों ने उसे दैवत्व की राह का सार्थक यात्री बनाया और आज भी अनेकानेक न्यस्त स्वार्थों के बीच इन मूल्यों के प्रति उसका निश्छल प्रेम देखना कठिन नहीं है। साहित्य, कला और संगीत आदि में इन मूल्यों की मुखरता सर्वाधिक आभासित होती रही है। सच तो यह है कि सम्पूर्ण भारतीय संस्कृति की अनंत यात्रा किसी एक धर्म की ही नहीं, मनुष्यता के इन्हीं सरोकारों और उनके प्रति हमारी गहन निष्ठा व समर्पण की भी यात्रा है।

जहाँ तक साहित्य का सम्बन्ध है किसी भी भाषा के साहित्य के मूल स्वर करुणा, संवेदना और उनके प्रति संघर्षों के लिए समर्पित हैं। संस्कृत में कविता का आदि स्वर जब क्रौंच वध देख कर वाल्मीकि के शब्दों में मुखरित हुआ तो वह करुणा को ही समर्पित था – 'माँ निशाद प्रतिष्ठातम् . . .' मानवता और उसकी रक्षा के प्रति मनुष्य का यह उद्घोष आज भी विभिन्न रूपों/विभिन्न प्रतिभाओं के बीच जीवंत है। जहाँ तक हिन्दी कविता का संदर्भ है, समय-समय पर इसमें जीवन के विभिन्न लोकरंगों, सरोकारों, मूल्यों और उनके लिए संघर्षों को जो शब्द मिले हैं, उनमें हमारी कविता का वितान और व्यापक हुआ है। प्रतिबद्ध कविता भी इसी परम्परा की अमूल्य धरोहर है। मानवीय सरोकारों के प्रति समर्पित स्वरों का इसमें मानो निर्झर प्रवाह गतिशील है।

इस परम्परा में सुदामा पाण्डेय 'धूमिल' का नाम अत्यन्त महत्वपूर्ण है। उनकी कविता अपने जीवंत प्रयोगों, नये से नये प्रतीकों, मुहावरों और साफगोई के साथ समाज के सबसे आखिरी पायदान पर खड़े शोषित-पीड़ित आदमी के पक्ष में खड़ी दिखती है। इस सरोकार के साथ उनकी कविता कहीं भी और कभी भी समझौता नहीं करती बल्कि चट्टान की तरह अडिग और न्याय के लिए संघर्षरत दिखती है। इसीलिए धूमिल को आधुनिक हिन्दी कविता के प्रमुख हस्ताक्षरों में स्वीकार किया गया है। वर्गीय हितों को पहचानती उनकी बेलौस कविता की यह बानगी ही यह जताने के लिए काफी है कि वह 'कला के लिए कला' की यथास्थितिवादी मानसिकता से कितनी अलग है – 'लोहे का स्वाद लोहार से मत पूछा, उस घोड़े से पूछो, जिसके मुंह में लगाम है।' इसी तरह गरीबी और अभाव के लिए जिम्मेदार ताकतों के खिलाफ भी

वह निर्मम हैं – 'इस खाली पेट के सिवा/तुम्हारे पास वह कौन सी सुरक्षित जगह है/जहाँ खड़े होकर तुम/अपने दाहिने हाथ की साजिश के खिलाफ लड़ोगे।'

जाहिर है कि धूमिल ऐसी कविताओं के साथ नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, मुक्तिबोध और राजकमल चौधरी जैसे महान प्रतिबद्ध कवियों की अग्रिम कतारों में अपनी मौजूदगी दर्ज कराते हैं। ऐसे महान कवि सुदामा पाण्डेय 'धूमिल' के प्रेरक व्यक्तित्व और कृतित्व को जिस तरह से लेखक और साहित्यकार डॉ. रमेश प्रताप सिंह ने अपनी इस पुस्तक 'सुदामा पाण्डेय 'धूमिल' में शब्द दिये हैं, व्यवस्थित ढंग से संजोया है, वह अत्यन्त सराहनीय है। विद्वान लेखन ने इस पुस्तक में उनकी कविता के मूल स्वरों, शिल्प और सरोकारों को जिस स्पष्टता से अभिव्यक्ति देने में सफलता पायी है, उसके लिए उन्हें अनेकानेक साधुवाद। आशा है कि हिन्दी साहित्य के जागरूक पाठकों के बीच उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान की स्मृति संरक्षण योजना के अन्तर्गत प्रकाशित इस महत्वपूर्ण पुस्तक का सभी जागरूक पाठक वर्गों के बीच यथोचित स्वागत होगा।

उदय प्रताप सिंह
कार्यकारी अध्यक्ष

भूमिका

साहित्य काल सापेक्ष होता है, गतिशील होता है और परिवर्तन को सदैव अपने आगोश में समेटे रहता है। समय-समय पर होने वाले बदलाव इसके प्रमाण हैं। साहित्य समाज की मुख्य धारा से जुड़ा होता है जैसे ही समाज में बदलाव की सुगबुगाहट होती है रचनाकार सतर्क हो जाता है। आदिकाल से लेकर रीतिकाल तक यह बदलाव लम्बे अन्तराल पर देखने को मिलता है लेकिन आधुनिक काल में साहित्य एवं समाज में बदलाव का आलम तीव्र हो गया मानो इस काल खण्ड के साहित्य को पंख लग गये हों। शायद यही समय की माँग भी थी। अस्सी का दशक हिन्दी साहित्य में 'वादों' की लम्बी कतार लेकर उपस्थित हुआ। 'अपनी ढपली अपना राग' की कहावत चरितार्थ होने लगी। यह कहावत न सिर्फ साहित्य अपितु शासन पर भी अक्षरशः लागू हुई। समकालीन कवियों ने कविता को एक सशक्त औजार के रूप में प्रयुक्त किया।

समकालीन कविता अपनी पूर्ववर्ती हिन्दी कविता से कई अर्थों में भिन्न है। इस काल की कविता इतिवृत्तात्मकता, वैयक्तिकता, यथार्थता, प्रयोगधर्मिता एवं व्यंग्यात्मकता से निकलकर सीधे तौर पर व्यवस्था से मुठभेड़ करती नजर आती है। समकालीन कवियों का मानना है कि अब परदे के पीछे से वार करने का समय नहीं है। अब व्यंग्य का समय भी निकल चुका है। आज की सामाजिक, राजनीतिक व्यवस्था पर सीधे प्रहार करने का समय है, क्योंकि कवि और कविता सिर्फ उतनी देर तक सुरक्षित है जितनी देर तक 'तनी हुई गड़ाँस के बीच बोटी।' आज जरूरत है 'सही कविता' और 'सार्थक व्यक्तव्य' की। इस सार्थक व्यक्तव्य को ही समकालीन कवियों ने अपने साहित्य का प्रमुख आधार बनाया। धूमिल ने तो यहाँ तक कहा है कि 'मुझे अपनी कविता के लिए दूसरे प्रजातंत्र की तलाश है।'

धूमिल समकालीन कविता के सशक्त हस्ताक्षर हैं। सन् 1972 में प्रकाशित उनका प्रथम संग्रह 'संसद से सड़क तक' काफी चर्चित रहा। धूमिल के तीनों संग्रहों की पड़ताल करने पर स्पष्ट हो जाता है कि वे गवईगंध से जुड़े एक जनकवि हैं। सामाजिक पीड़ा, संवेदना और व्यवस्था के प्रति खीझ उनके साहित्य का प्रमुख कथ्य है। वे विद्रोह के कवि हैं। उनका मानना है कि व्यवस्था को सुधारने का जो प्रयत्न पूर्ववर्ती कवियों ने व्यंग्य के माध्यम से किया वह पूरी तरह सफल नहीं रहा क्योंकि आज मानवता लगभग समाप्त हो गयी है। नेता-नौकरशाह सिर्फ अपना उल्लू सीधा करने में लगे हैं। धूमिल ने समकालीन कविता को एक नई पहचान दी - कथ्य एवं

दोनों ही स्तरों पर। यद्यपि उनके समीक्षकों ने उनकी कविता को भदेस की ा भी कहा जो पूरी तरह तर्कसंगत नहीं है। यह सच है कि उनके साहित्य में शब्द ऐसे आये हैं जो असाहित्यिक कहे जा सकते हैं लेकिन उनका न आना भी धूमिल के वश में नहीं था। कुछ शब्दों को दर-किनार कर धूमिल के साहित्य ाड़ताल सार्थक होगी। समकालीन कविता में उनका प्रदेय निःसंदेह बड़ा है।

धूमिल की प्रतिबद्धता किसी वाद विशेष से नहीं हैं। ऊपरी तौर पर तो वे वादी विचारधारा से जुड़ते नजर आते हैं लेकिन उनकी कविताओं की तह में करने पर यह लगता है कि उनकी दिलचस्पी किसी वाद में नहीं हैं। वे जनता क्षधर हैं। उनकी कविता जनविरोधी नीतियों को तार-तार करती है। धूमिल कविता ारा समाज के ऐसे सभी लोगों पर प्रहार करते हैं जो जन विरोधी हैं। हाथ पर रखकर तमाशबीन बने बुद्धिजीवियों पर भी उनका क्रोध स्वाभाविक है। इसीलिए नपर भी प्रहार करते हैं। निश्चित रूप से धूमिल के साहित्य में वे सारी प्रवृत्तियाँ ान हैं जो जनमानस को कवि से जोड़ती हैं। धूमिल पर कुछ आलोचनात्मक कें प्रकाशित हैं लेकिन सम्पूर्ण व्यक्तित्व एवं कृतित्व के अध्ययन का उनमें अभाव स पुस्तक के माध्यम से मैंने एक लघु प्रयास किया है। यह कितना सफल है यह द्यार्थी एवं प्रबुद्ध पाठक ही तय करेंगे।

इस पुस्तक के प्रकाशन में उ०प्र० हिन्दी संस्थान की अहम भूमिका है जिसके मैं संस्था के अधिकारियों का आभारी हूँ। मेरे अल्पज्ञान को पुस्तकाकार रूप देने रुवर डॉ० कमला शंकर त्रिपाठी का विशेष योगदान है जिन्होंने समय-समय पर ा बहुमूल्य समय देकर लेखन में आने वाली समस्याओं का निदान किया। श्री नारायण स्नातकोत्तर महाविद्यालय लखनऊ की प्रबन्ध समिति के अध्यक्ष एवं पूर्व महानिदेशक श्री वी०एन० मिश्र और कालेज के प्राचार्य डॉ० एस० डी० शर्मा ो प्रोत्साहन मिलता रहा है उसके लिए मैं उनके प्रति श्रद्धानत हूँ। अपने द्यालय के सभी सहयोगियों का भी आभार प्रकट करना चाहता हूँ जो ा-अप्रत्यक्ष रूप से मुझे प्रोत्साहित करते रहते हैं। कुछ आत्मीय ऐसे हैं जिनका पल सहयोग मिलता रहता है मैं उन्हें साधुवाद देता हूँ।

मेरे अथक प्रयास के बाद भी पुस्तक में कुछ त्रुटियाँ शेष होंगी, जिनके प्रति मैं तनों से क्षमा प्रार्थी हूँ।

– रमेश प्रताप सिंह

सुदामा पाण्डेय 'धूमिल'

लेखक

डॉ० रमेश प्रताप सिंह

असिस्टेन्ट प्रोफेसर

स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग

श्री जे० एन० पी० जी० कालेज,

लखनऊ

उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान

(स्मृति संरक्षण योजना)

राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन हिन्दी भवन

6, महात्मा गांधी मार्ग, हजरतगंज, लखनऊ

प्रकाशक :
मनीष शुक्ल
निदेशक
उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान
लखनऊ

स्मृति संरक्षण योजना के अन्तर्गत प्रकाशित।

ग्रन्थमाला संख्या : 28

प्रथम संस्करण : 2016

ISBN : 978-93-82175-75-9

प्रतियाँ : 500

मूल्य : ₹ 155=00 (एक सौ पचपन रुपये मात्र)

मुद्रक
रोहिताश्व प्रिण्टर्स
268, ऐशबाग रोड, लखनऊ
फोन : 2692973

आधुनिक हिन्दी कविता के मर्मज्ञ,

साहित्य चिन्तक गुरुवर

डॉ० कमला शंकर त्रिपाठी

को

सादर . . .

प्रकाशकीय

हिन्दी कविता के यदि सर्वप्रमुख गुण की चर्चा की जाए, तो वह है उसकी विविधता। जीवन का कोई भी रंग ऐसा नहीं है, जो उसमें न दिखता हो। यहाँ तक कि शिल्पगत विविधता भी उसकी अमूल्य धरोहर है। कहीं छंद, कहीं दोहा, कहीं गीत, कहीं अतुकांत और कहीं समय-सरोकारों के साथ खड़े रहने के लिए शिल्प को भी पीछे छोड़ती सपाटबयानी या वक्तव्य सरीखी कविता। एक ओर परम्परा से भरपूर लगाव तो दूसरी ओर प्रयोगधर्मिता भी उसकी विशिष्ट पूंजी है। ऐसे अनेकानेक प्रयोगों के बीच वर्गीय हितों के साथ खड़ी प्रतिबद्ध परम्परा के सशक्त हस्ताक्षर हैं स्वर्गीय सुदामा पाण्डेय 'धूमिल'।

हिन्दी साहित्यसेवी डॉ. रमेश प्रताप सिंह ने उनके समूचे व्यक्तित्व को इस पुस्तक 'सुदामा पाण्डेय 'धूमिल' में जिस व्यवस्थित ढंग से शब्द दिये हैं, उससे उनके जटिल व्यक्तित्व को आसानी से समझा जा सकता है। पूरी पुस्तक सात अध्यायों में विस्तारित है - जीवनवृत, कृतित्व परिचय, आधुनिकता बोध और धूमिल, धूमिल के काव्य की विषयवस्तु, धूमिल का काव्य शिल्प, पटकथा के बहाने लम्बी कविता की पड़ताल और उपसंहार। अंत में संदर्भ ग्रंथों का उल्लेख पुस्तक सामग्री को और अधिक तथ्यपरक बनाता है। उत्तर प्रदेश के एक अत्यन्त पिछड़े क्षेत्र पाण्डे का पुरवा, वाराणसी में जन्में श्री धूमिल ने सिर्फ 39 वर्षों का जीवन जिया, पर उनकी कविता के प्रतिबद्ध सरोकार अपनी उपमा आप हैं। उनके निकट कविता साहित्य की पूंजी ही नहीं, शोषित-पीड़ित आदमी की आवाज बन जाती है। यों तो उनके जीवनकाल में उनका सिर्फ एक ही काव्य संग्रह 'संसद से सड़क तक' प्रकाशित हो सका था (दो - 'कल सुनना मुझे' और 'सुदामा पाण्डेय का प्रजातंत्र' - बाद में आये) परन्तु हिन्दी कविता में धूमिल को स्थापित करने के लिए यह अकेला संकलन ही काफी था। इस संग्रह की यह पंक्तियाँ हर किसी को झकझोरने की क्षमता रखती हैं - 'एक आदमी रोटी बेलता है/एक आदमी रोटी खाता है/एक तीसरा आदमी भी है/जो न रोटी बेलता है/न रोटी खाता है/वह सिर्फ रोटी से खेलता है/मैं पूछता हूँ - यह तीसरा आदमी कौन है/मेरे देश की संसद मौन है।' आज समाज में जैसी विसंगतियाँ बढ़ रही हैं, उनके प्रति ऐसी कविताएँ हमें और अधिक जागरूक बनाती हैं। जनतंत्र के साथ बढ़ रहे उपहासों के खिलाफ धूमिल इस कदर निर्मम हैं कि अनेक अवसरों पर इस पर भी सवाल उठाये बिना नहीं रहते। मसलन - 'दरअसल, अपने यहाँ जनतंत्र/एक ऐसा तमाशा है/जिसकी जान/मदारी की भाषा है।' धूमिल ने प्रबंध काव्य

की तर्ज पर अनेक लम्बी कविताएँ भी लिखीं। इनमें समाज विशेष कर आम आदमी और गंवई-गाँव से जुड़े परिवेश को शब्द देते 'कोलाज' देखते-पढ़ते ही बनते हैं - जीवंत, प्रतिबद्ध और संघर्षरत !

उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान अपनी स्मृति संरक्षण योजना के अन्तर्गत इसका प्रकाशन कर गौरवान्वित है। डॉ. रमेश प्रताप सिंह हिन्दी साहित्य के निष्णात विद्वान हैं और इस पुस्तक सुदामा पाण्डेय 'धूमिल' के प्रणयन के लिए उन्होंने जो अकथनीय श्रम किया है, उनके समूचे व्यक्तित्व को संक्षेप में व्यवस्थित रूप दिया है, सारगर्भित प्रस्तुति से इसे विशिष्ट पहचान दी है, उसके प्रति हम उनके विशेष आभारी हैं। आशा है, भविष्य में भी उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान को उनका ऐसा ही सहयोग मिलता रहेगा। जहाँ तक हिन्दी साहित्य के अध्येताओं और जागरूक पाठकों का सन्दर्भ है, विश्वास है कि उनके बीच भी यह पुस्तक सुदामा पाण्डेय 'धूमिल' सराहना पायेगी, अपनी उपादेयता सिद्ध करेगी।

मनीष शुक्ल
निदेशक

निवेदन

मनुष्य का अब तक का विकास शायद ही यह ऊंचाइयां छू पाता, यदि उसमें करुणा, प्रेम, अहिंसा और भाईचारे जैसे मानवीय गुण न होते। सत्य की खोज और उसे स्थापित करने के प्रति अटूट आग्रह न होता। करुणा और प्रेम जैसे शाश्वत मूल्यों ने उसे दैवत्व की राह का सार्थक यात्री बनाया और आज भी अनेकानेक न्यस्त स्वार्थों के बीच इन मूल्यों के प्रति उसका निश्छल प्रेम देखना कठिन नहीं है। साहित्य, कला और संगीत आदि में इन मूल्यों की मुखरता सर्वाधिक आभासित होती रही है। सच तो यह है कि सम्पूर्ण भारतीय संस्कृति की अनंत यात्रा किसी एक धर्म की ही नहीं, मनुष्यता के इन्हीं सरोकारों और उनके प्रति हमारी गहन निष्ठा व समर्पण की भी यात्रा है।

जहाँ तक साहित्य का सम्बन्ध है किसी भी भाषा के साहित्य के मूल स्वर करुणा, संवेदना और उनके प्रति संघर्षों के लिए समर्पित हैं। संस्कृत में कविता का आदि स्वर जब क्रौंच वध देख कर वाल्मीकि के शब्दों में मुखरित हुआ तो वह करुणा को ही समर्पित था – 'माँ निशाद प्रतिष्ठातम् . . .' मानवता और उसकी रक्षा के प्रति मनुष्य का यह उद्घोष आज भी विभिन्न रूपों/विभिन्न प्रतिभाओं के बीच जीवंत है। जहाँ तक हिन्दी कविता का संदर्भ है, समय-समय पर इसमें जीवन के विभिन्न लोकरंगों, सरोकारें, मूल्यों और उनके लिए संघर्षों को जो शब्द मिले हैं, उनमें हमारी कविता का वितान और व्यापक हुआ है। प्रतिबद्ध कविता भी इसी परम्परा की अमूल्य धरोहर है। मानवीय सरोकारों के प्रति समर्पित स्वरों का इसमें मानो निर्झर प्रवाह गतिशील है।

इस परम्परा में सुदामा पाण्डेय 'धूमिल' का नाम अत्यन्त महत्वपूर्ण है। उनकी कविता अपने जीवंत प्रयोगों, नये से नये प्रतीकों, मुहावरों और साफगोई के साथ समाज के सबसे आखिरी पायदान पर खड़े शोषित-पीड़ित आदमी के पक्ष में खड़ी दिखती है। इस सरोकार के साथ उनकी कविता कहीं भी और कभी भी समझौता नहीं करती बल्कि चट्टान की तरह अडिग और न्याय के लिए संघर्षरत दिखती है। इसीलिए धूमिल को आधुनिक हिन्दी कविता के प्रमुख हस्ताक्षरों में स्वीकार किया गया है। वर्गीय हितों को पहचानती उनकी बेलौस कविता की यह बानगी ही यह जताने के लिए काफी है कि वह 'कला के लिए कला' की यथास्थितिवादी मानसिकता से कितनी अलग है – 'लोहे का स्वाद लोहार से मत पूछा, उस घोड़े से पूछो, जिसके मुंह में लगाम है।' इसी तरह गरीबी और अभाव के लिए जिम्मेदार ताकतों के खिलाफ भी

वह निर्मम हैं – 'इस खाली पेट के सिवा/तुम्हारे पास वह कौन सी सुरक्षित जगह है/जहाँ खड़े होकर तुम/अपने दाहिने हाथ की साजिश के खिलाफ लड़ोगे।'

जाहिर है कि धूमिल ऐसी कविताओं के साथ नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, मुक्तिबोध और राजकमल चौधरी जैसे महान प्रतिबद्ध कवियों की अग्रिम कतारों में अपनी मौजूदगी दर्ज कराते हैं। ऐसे महान कवि सुदामा पाण्डेय 'धूमिल' के प्रेरक व्यक्तित्व और कृतित्व को जिस तरह से लेखक और साहित्यकार डॉ. रमेश प्रताप सिंह ने अपनी इस पुस्तक 'सुदामा पाण्डेय 'धूमिल' में शब्द दिये हैं, व्यवस्थित ढंग से संजोया है, वह अत्यन्त सराहनीय है। विद्वान लेखन ने इस पुस्तक में उनकी कविता के मूल स्वरों, शिल्प और सरोकारों को जिस स्पष्टता से अभिव्यक्ति देने में सफलता पायी है, उसके लिए उन्हें अनेकानेक साधुवाद। आशा है कि हिन्दी साहित्य के जागरूक पाठकों के बीच उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान की स्मृति संरक्षण योजना के अन्तर्गत प्रकाशित इस महत्वपूर्ण पुस्तक का सभी जागरूक पाठक वर्गों के बीच यथोचित स्वागत होगा।

उदय प्रताप सिंह
कार्यकारी अध्यक्ष

अनुक्रम

प्रथम अध्याय

जीवनवृत्त एवं व्यक्तित्व

सुदामा पाण्डेय 'धूमिल' समकालीन कविता के प्रमुख स्तम्भ हैं। हिन्दी साहित्य-जगत में उन्हें संघर्ष, विद्रोह, क्रान्ति, विसगंतियों पर प्रहार करने वाला और अपने नये तेवर के साथ सामाजिक मुखौटों का पर्दाफाश करने वाला कवि माना गया है। कबीर, निराला, मुक्तिबोध आदि की भाँति धूमिल भी जीवन और कविता के बीच दो-दो हाथ करते नजर आते हैं। यद्यपि उनका साहित्यिक जीवन अल्प ही रहा है लेकिन कविता के मिज़ाज को उन्होंने भली-भाँति पहचाना है। वे प्रयत्न करते रहे कि सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक मूल्यों के बिखराव से जो मोहभंग, मूल्यहीनता, अमानवीयता और अव्यवस्था समाज के लिए संक्रामक हो रही है उससे जनता को रूबरू करा दिया जाये। इसके लिए उन्होंने कविता को नुकीला और अचूक हथियार बनाया। समकालीन कविता प्रचलित जीवनबोध और मूल्यों के अन्तर्विरोधों को विद्रोह की भाषा में कहती है। सजे-धजे बिम्बों से यथार्थ की भयावहता का अंकन असंभव है। इसीलिए समकालीन कविता में विरोध और विद्रोह का स्वर मुखर है। धूमिल समकालीन कविता के सबसे महत्त्वपूर्ण प्रतिनिधि कवि के रूप में सामने आते हैं जिन्होंने परंपरागत मूल्यों और काव्य संवेदनाओं के प्रति निषेधात्मक दृष्टिकोण अपनाया। व्यवस्था के मध्य रहते हुए भी व्यवस्था का विरोध किया।

धूमिल का साहित्य-जगत में पदार्पण सन् 1960 के आस-पास होता है। कविता लेखन से पहले वे समसामयिक परिस्थितियों से रूबरू हुए और पहले से लिखी जा रही कविताओं को गहराई से देखा और उन्हें आत्मसात् किया। पहले कविता में आदमी की चीख का समाज पर एक व्यापक प्रभाव पड़ता था लेकिन आज 'कविता घेराव में किसी बौखलाये हुए आदमी का संक्षिप्त एकालाप' नजर आती है। आज कवि और कविता का प्रभाव लगभग समाज से समाप्त होता हुआ दिख रहा है, इसके पीछे कहीं न कहीं मानवीय मूल्यों का हनन नजर आता है। कविता किसी सनकी की प्रभावहीन आवाज बनकर रह गयी है जिसे घेरकर लोग तमाशा देखते हैं। कवि की विवशता उसे घुटन, टूटन, संत्रास और सामाजिक दवाब के कारण कायर बना देती है। धूमिल के शब्दों में -

> "कवि - याने भाषा में
> भदेस हूँ
> इस तरह कायर
> कि उत्तर प्रदेश हूँ।"[1]

धूमिल जैसे कवि जनमते तो हैं किन्तु मरते नहीं, और न ही किसी परिचय के मोहताज होते हैं। इनका परिचय देना बहुत आसान है लेकिन उन पर लिखना उतना ही मुश्किल धूमिल जैसे कवि अपने लिए नहीं बल्कि समाज के लिए अपना जीवन समर्पित कर देते हैं। उनका यह समर्पण ही इन्हें कालजयी बना देता है। धूमिल ने अपने जीवन वृत्त से सम्बन्धित किसी तथ्य या घटना का वर्णन नहीं किया है। उनके जीवन वृत्त के बारे में जो कुछ बिन्दु उनके परिजनों एवं मित्रों के माध्यम से मिलते रहे उन्हीं को आधार बनाकर यहाँ उनके जीवनवृत्त एवं व्यक्तित्व पर प्रकाश डालने का प्रयास किया जा रहा है।

जन्म

सुदामा पाण्डेय 'धूमिल' का जन्म वाराणसी से 12 किलोमीटर पूर्व पश्चिम स्थित पंचकोसी तीर्थ स्थान रामेश्वरम् महादेव से लगभग तीन किलोमीटर दूर वरुणा नदी के किनारे एक साधारण से गाँव 'खेवली' में 9 नवम्बर 1936 ई. को हुआ था। खेवली के जिस पुरवे में धूमिल का जन्म हुआ था उसे 'पांड़ेपुरवा' कहा जाता है। इसी गाँव में नीतिकार कविवर 'दीनदयाल गिरि' का भी जन्म हुआ था। खेवली अत्यन्त पिछड़ा हुआ गाँव है, जहाँ केवट, राजभर, ग्वाल आदि विभिन्न मेहनतकश लोगों का परिवार रहता है। शिक्षा यहाँ न के बराबर थी। अधिकतर लोग अशिक्षित ही थे, इसका अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि 1953 में हाईस्कूल परीक्षा उत्तीर्ण करने वाले उस गाँव के पहले छात्र धूमिल थे।

पारिवारिक जीवन

धूमिल के पूर्वजों का विवरण उनके प्रपितामह से मिलता है जिनका नाम पं. छेदापाण्डे था। उनके पुत्र पं. विन्ध्येश्वरी पाण्डेय के चार पुत्र-शिवनायक, रामनायक, हरिहर, और रामविलास थे। पं. शिवनायक के पाँच पुत्र हुए-सुदामा, कन्हैया, अर्जुन, तारकनाथ और लोकनाथ। सुदामा पाण्डेय के एक पुत्र 'रत्नशंकर' एवं एक पुत्री आशादेवी हुईं। उनकी माता का नाम 'रजवंती देवी' था। मध्यमवर्गीय कृषक परिवार में जन्मे सुदामा पाण्डेय 'धूमिल' के घर की आर्थिक स्थिति प्रारम्भ से ही काफी दयनीय रही। धूमिल जब बारह वर्ष के थे तभी उनके पिता का निधन हो गया और घर की दयनीय दशा के कारण उन्हें पढ़ाई छोड़कर घर चलाने का उपाय सोचना पड़ा। धूमिल के परिवार की एक परम्परागत विडम्बना यह थी कि जो व्यक्ति परिवार की हालत सुधारने की दिशा में प्रयत्नशील होता था वही काल का ग्रास बन जाता था। धूमिल के पुत्र रत्नशंकर के अनुसार - "इस आर्थिक विपन्नता के पीछे एक बहुत बड़ी

विडम्बना यह रही कि मेरे परिवार में पहले वही सदस्य काल कवलित होता रहा जो परिवार की आर्थिक धुरी होता था। जब-जब आर्थिक स्थिति थोड़ी संतोषजनक हुई तब-तब मेरे परिवार में ऐसा ही हुआ है। मेरे पितामह तथा उनके चार भाइयों की असामयिक मृत्यु तथा इस पीढ़ी में पिताजी की मृत्यु इस बात का प्रमाण है। धन-जन से सम्पन्न मेरा परिवार ऐसे ही समय-समय पर विधि-विडम्बना के कारण विपन्न होता रहा।"[2] पिता की मृत्यु के ग्यारह महीने बाद धूमिल का विवाह वाराणसी के लालपुर निवासी पं. नान्हक दीक्षित की पुत्री 'मूरत देवी' से हुआ। एक तरफ परिवार की विपन्न स्थिति और दूसरी तरफ विवाह का होना धूमिल के लिए आर्थिक संकटों से भरा नजर आने लगा। परिवार के भरणपोषण की जिम्मेदारी धूमिल के कन्धों पर असहनीय बोझ की तरह आ गयी।

शिक्षा और सेवावृत्ति

धूमिल की प्रारम्भिक शिक्षा बेसिक प्राइमरी पाठशाला 'भतसार' (खेवली से लगा हुआ गाँव) से शुरू हुई। यहाँ से कक्षा चार उत्तीर्ण करने के उपरान्त जुलाई 1947 ई. में उनका प्रवेश 'मिडिल स्कूल, हरहुआ', वाराणसी में कक्षा पाँच में कराया गया। वहीं से उन्होंने मिडिल की परीक्षा सन् 1950 ई. में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। आगे की पढ़ाई के लिए उनका प्रवेश 'कुर्मी क्षत्रिय इन्टर कालेज' हरहुआ, वाराणसी, सम्प्रति काशी कृषक इण्टर कालेज हरहुआ में हुआ। कक्षा आठ में प्रथम श्रेणी में पास होने के कारण धूमिल को कक्षा नौ और दस में छात्रवृत्ति मिलती रही और उन्होंने सन् 1953 में हाई स्कूल परीक्षा द्वितीय श्रेणी में पास की। तदनन्तर विज्ञान वर्ग से इण्टरमीडिएट करने के लिए उन्होंने हरिश्चन्द्र इण्टर कालेज वाराणसी में प्रवेश लिया लेकिन घर की आर्थिक स्थिति खराब होने के कारण उन्हें अपनी पढ़ाई बीच में ही छोड़नी पड़ी।

परिवार की आर्थिक स्थिति अत्यन्त दयनीय होने के कारण पढ़ाई से ज्यादा पारिवारिक भरण-पोषण को लेकर वे चिन्तित रहने लगे। धूमिल अपने पिता की तरह साहसी और जिद्दी थे। जो ठान लेते थे उसे पूरा करके ही दम लेते थे। ईश्वर के प्रति वे अविश्वासी थे और हर कार्य को अपने दम पर पूरा करना चाहते थे। यद्यपि धूमिल अपने परिवार में सबसे लाडले थे लेकिन परिस्थितियों ने उन्हें दो वक्त की रोटी से लड़ने को मजबूर कर दिया था। नियति का कुछ ऐसा खेल था कि धूमिल बचपन से ही संघर्ष को झेल रहे थे। 'कल सुनना मुझे' काव्य संग्रह की 'आज मैं लड़ रहा हूँ' शीर्षक कविता में कवि ने इस ओर संकेत भी किया है -

बच्चे भूखे हैं :
माँ के चेहरे पत्थर,
पिता जैसे काठ : अपनी ही आग में
जले हैं ज्यों सारा घर,
पेशेवर गुलाबों की हँसी ने
खारिज कर दिया है बसन्त
और कविता की नसों में
बहता हुआ खून
जरूरत की जगह
जहमत बन गया है
अक्सर उठते हैं सवाल
कहाँ है युवा-जन?
परिवर्तन के अग्निचक्र?
क्षुधित इतिहास?[3]

पढ़ाई-लिखाई छोड़कर धूमिल घर के भरण-पोषण के लिए कृषक बन गये और उन्होंने अपने अथक प्रयास से चार बीघे बंजर भूमि को काटकर उपजाऊ खेत बना दिया। उनके इस कार्य को रोकने के लिए गाँव के बुजुर्गों ने बहुत प्रयास किया लेकिन वे नहीं माने। केवल खेती से घर का गुजारा हो पाना मुश्किल देख धूमिल अपनी विधवा माँ, चाची और चार छोटे भाइयों (कन्हैया, अर्जुन, शोभनाथ, लोकनाथ) और अपनी पत्नी को रोता-बिलखता छोड़कर रोटी की तलाश में कलकत्ता चले गये। परिवार के भरण-पोषण की चिन्ता ने होनहार धूमिल को पढ़ाई के साथ-साथ गाँव भी छोड़ने पर मजबूर कर दिया। कलकत्ता पहुँचकर धूमिल सबसे पहले अपने मौसेरे भाई के घर गये लेकिन दुर्भाग्यवश उनके मौसेरे भाई ने उनकी किसी प्रकार की सहायता नहीं की जिससे निराश होकर धूमिल वहाँ से चल दिये। कठिनाई की इस घड़ी में धूमिल को अपने बचपन के सहपाठी तारकनाथ पाण्डेय की याद आयी जो कलकत्ता में ही रहते थे। धूमिल किसी तरह वहाँ पहुँचे। तारकनाथ के घर पर ही उनकी मुलाकात घीसन यादव से हुई जो लोहा ढोने का कार्य करते थे। धूमिल ने अपनी लगन और साहस के बल पर घीसन यादव के साथ लोहा ढोने का काम शुरू किया, क्योंकि शहर में टिके रहना उनके लिए सबसे आवश्यक था। वैसे भी संघर्ष से पीछे हटना उन्हें आता नहीं था। उनके इस फौलादी स्वभाव की हुंकार उनकी अन्तिम कविता की निम्न पंक्तियों में देखने की मिलती हैं –

"शब्द किस तरह
कविता बनते हैं
इसे देखो
अक्षरों के बीच गिरे हुए
आदमी को पढ़ो
क्या तुमने सुना है कि यह
लोहे की आवाज है या
मिट्टी में गिरे खून
का रंग।
लोहे का स्वाद
लोहार से मत पूछो
उस घोड़े से पूछो
जिसके मुँह में लगाम है।"[4]

धूमिल के जीवन का संघर्ष अनवरत जारी था, किन्तु इसी बीच उनके मित्र तारकनाथ पाण्डेय ने अपने बहनोई की सहायता से धूमिल की नौकरी लकड़ी व्यवसायी फर्म 'तलवार ब्रदर्स प्राइवेट लिमिटेड' में लगवा दी। यहाँ उन्हें 'पासिंग अफसर' का पद मिला। इस पद पर रहने के कारण धूमिल को देश के विभिन्न बीहड़ जंगलों एवं इलाकों में रहना पड़ता था जिससे वहाँ की जन-जातियों, मेहनतकश मजदूरों और पूँजीपतियों के बीच के सम्बन्धों को समझने का उन्हें बखूबी मौका मिला। श्रमजीवी वर्ग और पूँजीपति वर्ग के बीच की असमानता और धनपशुओं द्वारा किये जा रहे घृणित व्यवहार का कटु अनुभव उन्हें हुआ। उन्होंने महसूस किया कि विश्व के सारे आलीशान प्रतीक मजदूरों के आँसू और खून से बने हैं। यही धूमिल के जीवन का 'बर्निंग प्वाइन्ट' था जहाँ से धूमिल ने असमानता के कारण समाज में हो रहे अन्याय और विडम्बनाओं पर चिन्तन प्रारम्भ किया और उन्हें लगा कि समाज में ऐसी क्रांति की आवश्यकता है जो समानता ला सके। पहाड़ी-जंगली वातावरण, वहाँ का बदलता मौसम धूमिल को रास नहीं आया और वे अधिकतर बीमार रहने लगे। काम करने की जिद्द ने उन्हें चारपाई पकड़ने पर मजबूर कर दिया। इसी बीच कम्पनी मालिक मि. तलवार का ट्रंकाल आया कि वे मोतीहारी से गौहाटी चले जायें। धूमिल ने मि. तलवार को बताया कि "मैं अस्वस्थ हूँ" इस पर मि. तलवार ने कहा - "आई ऐम पेयिंग फार माई वर्क, नाट फार योर हेल्थ"। प्रत्युत्तर में धूमिल ने चोट करते हुए कहा - "बट आई ऐम वर्किंग फार माई हेल्थ, नाट फार योर वर्क"।[5] परिणामतः धूमिल की सेवाएं समाप्त कर दी गईं, किन्तु धूमिल के आत्मसम्मान को डिगाना

मुश्किल था। आजीविका के लिए कुछ करना अनिवार्य था, इसलिए धूमिल ने वाराणसी आकर विद्युत प्रविधि का डिप्लोमा प्रशिक्षण पूरा किया। यद्यपि नौकरी के प्रति उनका रुझान कम हो चुका था किन्तु पारिवारिक परिस्थितियों को देखते हुए उन्होंने सन् 1958 में विद्युत अनुदेशक के पद को स्वीकार कर लिया। सन् 1963 तक वे वाराणसी में ही तैनात रहे और गाँव से भी जुड़े रहे। इसके बाद 'पर्यवेक्षक' के पद पर उनकी प्रोन्नति हो गई और वे बलिया चले गये। लेकिन थोड़े समय के बाद ही वे पुनः वाराणसी आ गये। कुछ समय यहाँ रहने के बाद उनके लिए स्थानान्तरण सहारनपुर हो गया, जो उनके गाँव से बहुत दूर था और वहाँ रहना उनके लिए काफी कठिन था। बहुत परिश्रम एवं जुगाड़ के बाद वे पुनः वाराणसी वापस आ गये। उन्हीं दिनों विद्युत विभाग में कर्मचारियों का संगठन तेजी से उभरने लगा था जिसमें धूमिल की भूमिका काफी सक्रिय हो गई और बड़े पदों पर कार्यरत अधिकारियों के भ्रष्टाचार का पर्दाफाश भी हुआ। सारे उच्च अधिकारी धूमिल से बेहद चिढ़ने लगे और अन्ततः उनका स्थानान्तरण सीतापुर हो गया जो उनके जीवन का अन्तिम स्थानान्तरण था।

साहित्य-सृजन

पारिवारिक भरण-पोषण के लिए जहाँ एक ओर धूमिल अर्थार्जन में व्यस्त थे वहीं दूसरी ओर उनको ज्ञानार्जन का अभाव भी सालता रहा। सम्भवतः इसीलिए वे नौकरी के साथ-साथ शुद्ध हिन्दी और अंग्रेजी के अपने अल्प ज्ञान रूपी कोश को भरने में भी दिन-रात लगे रहते थे। हिन्दी और अंग्रेजी के कवियों का वे बड़ी बारीकी से अध्ययन करते रहे। अपनी इसी अध्यवसायी वृत्ति के कारण वे एक शीर्ष कवि के रूप में प्रतिष्ठित हुए। कविता के प्रति धूमिल का लगाव बचपन से ही रहा। 'कविता पर एक वक्तव्य' लेख में धूमिल ने लिखा है - "मुझे याद है- बनारसी लाल के साथ बैठकर मैनें पहली रचना की थी। हम दोनों सातवीं कक्षा के सहपाठी, बरना नदी का किनारा, सांझ का वक्त और कविता का विषय तय हुआ कि हम जिस पत्थर पर बैठे हैं, वहीं हो। कविता की दो पंक्तियाँ अब भी याद हैं। लिखा था -

पड़ा हुआ है, बरना नदी के तट पर
एक बड़ा काला-सा पत्थर।[6]

मेरे मित्र ने रचना देखी, कलम उठायी और पूरी गम्भीरता से 'के' काट दिया। मुझे समझाया कि पहली पंक्ति में दो मात्राएं अधिक थीं। वे मुझसे गुनी हैं यह सोचकर मैंने उनकी राय मान ली। उसके बाद से मैं निरन्तर लेखन कार्य करता रहा। प्रारम्भ में मित्रों के बीच विशिष्ट होने की तीव्र इच्छा ने और बाद में स्कूल में पुरस्कारों के

सम्मोहन ने मुझसे कविता लिखवायी। उस समय मैं कथ्य की अपेक्षा पदबन्धों के प्रति अधिक सचेष्ट था लेकिन कुछ वर्षों बाद पदबन्धों से मेरा मोहभंग होने लगा, क्योंकि उस समय कविता लिखना हास्यास्पद माना जाता था। मैंने कविता की लत को सामाजिक विडम्बनाओं से जोड़ने का प्रयास शुरू कर दिया।"[7]

धूमिल की मृत्यु के उपरान्त जो पाण्डुलिपियाँ उनके घर से उपलब्ध हुईं उनमें गीत, बिरहा, दोहा, शेर, कहानियाँ एवं निबन्ध मिले। वे पाण्डुलिपियाँ 1957–58 की थीं। अतः तभी से उनके लेखन का प्रारम्भ माना जा सकता है। उनकी सबसे पहली कहानी 'फिर भी वह जिन्दा है' 'साकी' पत्रिका में जून 1960 में प्रकाशित हुई थी। सन् 1961–62 के बीच धूमिल ने अनेक गीत लिखे जिनमें कुछ प्रकाशित भी हुए लेकिन उनकी गीत कविता क्रमबद्ध तरीके से प्रकाशित नहीं हो पायी। इन गीतात्मक कविताओं का सृजन उन्हें रास नहीं आया, क्योंकि जीवन में मिले कटु अनुभवों ने उन्हें काफी बेचैन कर रखा था। धीर-धीरे उनकी काव्ययात्रा का रुख बदलने लगा और कविता के प्रति भी उनका मोह भंग होने लगा। उनका मानना था कि कविता आनन्द की जगह यथार्थ को रेखांकित करे तो अधिक उपयुक्त होगी। धूमिल यह भी मानते थे कि यदि समाज में परिवर्तन कोई कर सकता हैं तो वह कविता ही है। इसीलिए जो विचार उनके मस्तिष्क में उथल-पुथल मचाते थें वे उन्हें नवीन प्रतीकों के माध्यम से व्यक्त कर देते थे। यथा –

> कविता, सिर्फ उतनी ही देर तक सुरक्षित है
> जितनी देर, कीमा होने से पहले,
> कसाई के ठीहे और तनी हुई, गड़ासे के बीच
> बोटी सुरक्षित है।'[8]

धूमिल बचपन से ही साम्यवादी विचारधारा से प्रभावित थे। वे नास्तिक व्यक्ति थे और आस्था-अनास्था के अन्तर्संघर्ष से वे निरन्तर जूझते रहते थे। इसके पीछे भी उनकी पुरांनी पारिवारिक परिस्थितियाँ देखने को मिलती हैं। धूमिल के साहित्य में इस तरह के वक्तव्य कई स्थानों पर दृष्टिगत होते हैं। स्वयं धूमिल के शब्दों में – वैसे कविता ऐसी उपलब्धि नहीं जिस पर गर्व किया जा सके, क्योंकि कोई कविता वस्तु सत्य से आगे नहीं जाती। अतिरिक्त इसके मैंने हर समर्थ उपलब्धकर्त्ता को हारे हुए जुआरी की तरह आत्मघात करते हुए देखा है।[9]

धूमिल की कथनी और करनी में अन्तर नहीं था। उनकी जो सोच थी, उनका जो समाज के प्रति दृष्टिकोण था वह उनकी कविताओं में भी स्पष्ट देखने को मिल जाता है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है –

'कविता –
शब्दों की अदालत में
मुजरिम के कटघरे में खड़े बेकसूर आदमी का
हलफनामा है।[10]

व्यवस्था के विरुद्ध धूमिल का यह अनुभव निरन्तर गहराता गया। वाराणसी आने के बाद उनकी काव्य-शक्ति को एक नई दिशा मिली। धूमिल के वैयक्तिक संघर्ष के साथ-साथ उनकी अनुभूतियों का भी विस्तार होता गया और यहीं से उन्हें प्रेरणा एवं प्रोत्साहन भी मिला जिसकी उन्हें दरकार थी। धूमिल की समाज के प्रति कटु अनुभूति ने उनकी कविता में औजार का काम किया और इसी से उन्हें सामाजिक विसंगतियों से लड़ने की प्रेरणा मिली।

साहित्यिक सम्पर्क

समसामयिक परिवेश की विषमताओं से संघर्ष करते हुए धूमिल की कविताओं में एक विशेष प्रकार की खनकदार, नुकीली आवाज स्पष्ट सुनाई देने लगी। साम्यवादी विचारधारा उनके साहित्य पर भी हावी होती गयी और 'संसद से सड़क तक' की लड़ाई वे अकेले लड़ने को तैयार हो गये। पूंजीवादी व्यवस्था से घृणा और जनवाद से असीम प्रेम, क्रान्ति का समर्थन और हत्या का सौन्दर्यशास्त्र उन्हें प्रिय लगने लगा। वाराणसी लौटने के उपरान्त उनकी मुलाकात प्रसिद्ध चित्रकार रामचन्द्र शुक्ल और प्रसिद्ध कथाकार प्रो. शिव प्रसाद सिंह से हुई। दोनों उनके साहित्य-सम्पर्क के नये अध्याय के रूप में अवतरित हुए। उनके माध्यम से धूमिल की मुलाकात प्रसिद्ध मार्क्सवादी समीक्षक प्रो. नामवर सिंह एवं उनके भाई डॉ. काशीनाथ सिंह से हुई। इनके सान्निध्य में आने के बाद धूमिल की इनसे गहरी मित्रता हो गयी। डा. नामवर सिंह से मिलने के पश्चात् धूमिल की वामपंथी विचारधारा अधिक धारदार हुई। त्रिलोचन के 'कवि' और 'विचारक' से धूमिल विशेष प्रभावित हुए। उनसे उन्हें सृजन की निरन्तर नयी प्रेरणा प्राप्त होती रही। डॉ. नामवर सिंह ने धूमिल के व्यक्तित्व को माँजा, त्रिलोचन ने उन्हें भाषिक समझदारी दी और काशीनाथ सिंह ने यथार्थ के नए अनुभवों से उनका साक्षात्कार करने की प्रेरणा दी। इस तरह वाराणसी – प्रवास धूमिल के लिए वरदान साबित हुआ। यहीं आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी तथा पं. विद्या निवास मिश्र जैसे समकालीन चिन्तकों से उनका सम्पर्क भी हुआ। इन विद्वानों से उन्होंने पुराने काव्य-निकष और नवीन काव्य-मूल्यों के अन्तर्द्वन्द्व को बारीकी से परखना सीखा। इस तरह काव्य-दिशा की तलाश में धूमिल उन सबके सम्पर्क में आए जो उन्हें

उपलब्ध थे। राजकमल चौधरी से लेकर अमेरिकी बिटनीक कवि गिन्सबर्ग तक का उनका संधान उनके गतिमान कवि मानस का परिचायक है।

इन कवियों-आलोचकों के अतिरिक्त वाराणसी के लगभग सभी युवा-कवियों से धूमिल की पहचान हो गई थी जिनमें गोविन्द उपाध्याय, नागानन्द मुक्तिकण्ठ, त्रिलोचन, शिव प्रसाद सिंह, रामचन्द्र पाण्डेय, रामचन्द्र शुक्ल, भगवत शरण उपाध्याय, ठाकुर प्रसाद सिंह, केदारनाथ सिंह, विश्वनाथ त्रिपाठी, शम्भूनाथ सिंह, श्याम तिवारी, प्रभाकर द्विवेदी, विजय मोहन सिंह, वाचस्पति चतुर्वेदी, मलय राम चौधरी, सत्यव्रत शर्मा, मोहन राज शर्मा, चन्द्रभूषण मिश्र आदि प्रमुख हैं। उनके सम्पर्क में आने के बाद गीत काव्य लिखने वाला कवि धूमिल अपने स्वाभाविक तेवर में नजर आने लगा। उनकी काव्य-यात्रा का रास्ता ही बदल गया। धूमिल का कविता के प्रति बढ़ते लगाव को व्यक्त करते हुए काशीनाथ सिंह कहते हैं, "धूमिल हर उस आदमी के दोस्त थे जिसके पास किताबें और जेब में चाय के पैसे होते थे।"[11]

रोगग्रस्तता एवं मृत्यु

धूमिल के समग्र जीवन पर दृष्टक्षेप करने से यह सिद्ध हो जाता है कि वे एक जुझारू और कर्मठ व्यक्ति थे जो आजीवन परिस्थितियों एवं सामाजिक विषमताओं के विरूद्ध मोर्चा खोलते रहे। कम उम्र में पिता की मृत्यु, पारिवारिक जिम्मेदारियाँ जीवन यापन की समस्या और अपने बेबाकीपन के कारण उनके जीवन में नित्य नयी समस्याएं एवं व्यवधान आते रहे। यहाँ तक कि नौकरी में भी अपने अधिकारियों से निरन्तर उनका मतभेद बना रहा जिसका फल उन्हें बराबर भुगतना पड़ा। वे भीतर से टूटते गये और एक निर्द्वन्द्व एवं सुखी व्यक्ति का जीवन कभी नहीं जी पाये। पहले प्राइवेट नौकरी में तनाव फिर सरकारी नौकरी में उनकी स्पष्टवादिता के कारण बार-बार अधिकारियों से मतभेद होना और स्थानांतरण होने का क्रम जारी रहा। इन सबसे उनकी दुश्चिन्ताएं निरन्तर बढ़ती गयी। उन्हें तेज सिर दर्द की शिकायत होने लगी। आरम्भ में माइग्रेन समझकर इलाज हुआ, किन्तु उनकी वेदना निरन्तर असह्य होती गयी। घरेलू इलाज सब बेकार हो गये और अन्ततः उन्हें 18 अक्टूबर, 1974 को बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय मेडिकल कालेज में भर्ती कराया गया। काशी के उनके सारे अभिन्न मित्र मेडिकल कालेज में उनको हर प्रकार की सुविधा दिलाने का प्रयास करते रहे कि वे अतिशीघ्र स्वस्थ हो जायें लेकिन सबका प्रयास निरर्थक साबित हुआ जब डॉ० कटियार ने रिपोर्ट के आधार पर स्पष्ट किया कि धूमिल 'ब्रेन ट्यूमर' के शिकार हो चुके हैं। डाक्टरों की सलाह पर उनके सगे-सम्बन्धियों ने उन्हें 01 नवम्बर,

1974 को के0जी0एम0सी0 मेडिकल कालेज, लखनऊ में भर्ती कराया। अपने बेड पर कटे हुए मजबूत पेड़ की तरह जिन्दगी और मौत की दूरी को खामोशी से नाप रहे धूमिल के अगल-बगल बीमार चेहरों की भीड़ थी। उनके भीतर मृत्यु का खौफनाक घेरा बनता जा रहा था। उस समय की अन्तर्वेदना की स्पष्ट झलक उनकी कविता "आज मैं लड़ रहा हूँ" में देखी जा सकती है -

आज अँधेरा है और खून
लगा हुआ है हाथों में
जिसे हमने हासिल किया है
वह पालने में नहीं - रक्त लथपथ
कराहों की बगल में पड़ा है।[12]

धूमिल के बेहद करीब मित्रों ने अपना सारा जोर लगा दिया। लखनऊ के डाक्टरों ने भी धूमिल को बचाने का अथक प्रयास किया लेकिन 'नियति की गति टारे न टरे'। 10 फरवरी, 1975 रात लगभग 10 बजे समाज से हार न मानने वाला, जुझारू व्यक्तित्व का प्रतीक धूमिल ईश्वरीय लीला से हार गया और सदा के लिए संघर्ष शिथिल हो गया। जो हुंकार- झंकार उनकी आवाज में कविताओं के माध्यम से बजती थी वह दीवारों से लड़कर सदा के लिए शान्त हो गयी। धूमिल की कुल जीवन लीला मात्र 48 साल 03 महीने की थी। उनके व्यक्तित्व की विशेषताओं का मूल्याँकन कुछ आलोचकों के लेखों और कुछ उनकी कविताओं, निबन्धों एवं डायरी के पन्नों से होता है। धूमिल के जीवट व्यक्तित्व को शब्दों में व्यक्त करना असम्भव सा लगता है। जो व्यक्ति ब्रेन ट्यूमर जैसी भयानक बीमारी से कराह रहा है, मृत्यु से जूझ रहा है फिर भी समाज को कविता का अर्थ समझाने का प्रयास कर रहा है। कितना अभूतपूर्व व्यक्तित्व उनका था यह कह पाना कठिन है। मृत्यु के मात्र एक दिन पहले उन्होंनें पाठकों को शब्द का अर्थ समझाते हुए लिखा -

लोहे का स्वाद
लोहार से मत पूछो
उस घोड़े से पूछो
जिसके मुँह में लगाम है।[13]

धूमिल की मृत्यु पर राज शेखर ने लिखा "हममें से कौन जानता था - छमहुँआ घाट के किनारे खड़ा नौजवान बरगद के मजबूत तने - सा धूमिल का चौड़ा कन्धा, अकस्मात् हमारे बगल से गायब हो जायेगा और सीने में उसकी मौत का तल्ख एहसास लिए हुए हमें खेवली की यात्रा करनी होगी।[14]

व्यक्तित्व

सुदामा पाण्डेय 'धूमिल' एक बड़े रचनाकार थे। कविता उनके सामाजिक परिस्थितियों का दस्तावेज थी। वे जैसे-जैसे समाज को पढ़ते गये वैसे-वैसे उनका साहित्य एवं उसकी दिशा बदलती गई। धूमिल बचपन में अत्यन्त दुर्बल थे। उनके पितामह पं. विन्ध्येश्वरी प्रसाद पाण्डेय एक पहलवान थे और धूमिल को अपने साथ रोज आखाड़े पर ले जाया करते थे। वे अखाड़े में उन्हें कसरत करवाते थे और समवयस्क बच्चों के साथ कुश्ती लड़ाते थे। इसका असर धूमिल के शरीर एवं जीवन पर काफी पड़ा और कालान्तर में उनके शरीर का विकास तेजी से हुआ। जो धूमिल बचपन में कमजोर थे किशोरावस्था में आते ही वे हृष्ट-पुष्ट और आकर्षक दिखने लगे। उनके अनुज कन्हैया पाण्डेय के शब्दों में "वे सादा मिजाज थे, मगर गुदड़ी में ढाकने पर भी उनका तप्तकान्त मुख, उन्नत नासा एवं प्रशस्त ललाट छिप नहीं सकता था। उन्हें एक बार देखकर आप आसानी से भुला नहीं सकते। साधारण हैंडलूम के सस्ते कपड़े का खुली बाँह का कुर्ता, धोती तथा पैरों में मामूली चमड़े की चप्पलों के साथ, उनके चेहरे की स्वाभाविक शान्ति एवं गम्भीरता बहुधा उसके भीतर छिपी प्रतिभा को ढाँकने का काम करती थी किन्तु धधकते अंगारों की तरह चमकती बड़ी-बड़ी आँखों से निकलती किरणें सबका भाण्डा फोड़ देती थी।[15]

धूमिल का कद लम्बा, हट्टा-कट्टा शरीर यह तो सिद्ध करता था कि उनमें बल है लेकिन शारीरिक शक्ति, मानसिक शक्ति का परिचायक नहीं थी जो कि उनमें कूट-कूट कर भरी थी। कभी-कभी वे अपनी मूँछ बढ़ा लेते थे जिससे उनका चेहरा और भी आकर्षक लगने लगता था। यदा-कदा चोटी सहित सिर के बाल तथा मूँछ भी साफ कर लेते थे। उनके चेहरे पर एक खास तेज नजर आता था जब वे कुछ बोलते थे। धूमिल के शारीरिक बल का वर्णन करते हुए गोविन्द उपाध्याय ने लिखा है "धूमिल में कुल मिलाकर यह कहना होगा कि अद्भुत शक्ति थी- बौद्धिक तथा शारीरिक भी। खेवली गाँव में अपने घर से आई.टी.आई. के अपने कार्यालय तक कभी-कभी महीनों साईकिल से आते जाते थे जो करीब बारह मील पड़ता था।[16]

धूमिल की शारीरिक शक्ति एवं उनके साहस का अन्दाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि 'ब्रेन ट्यूमर' जैसी असहनीय बीमारी में भी वे रोजमर्रा के कामों में लगे रहते थे और दर्द का एहसास कभी अपने चेहरे पर नहीं आने देते थे। धूमिल के आन्तरिक व्यक्तित्व के बारे में अक्खड़, फक्कड़ और घुमक्कड़ जैसे परंपरागत शब्दों के सहारे कुछ भी कहना उनके प्रति अन्याय होगा। वस्तुतः धूमिल की कविता जिस तरह से पारम्परिक आलोचना के शब्दों में बाँधी नहीं जा सकती ठीक उसी प्रकार

उनका व्यक्तित्व भी परम्परा के घिसे-पिटे शब्दों में वर्णित करना कठिन है। शारीरिक बल सम्पन्न धूमिल कविताओं के माध्यम से एवं अपने वैचारिक दृष्टि से भले ही वीरभद्र के रूप में प्रकट हुए लेकिन व्यवहार में वह नितान्त सरल थे। यह बात और है कि प्रसंग विशेष पर किसी से किसी विषय पर मतभेद और वितंडावाद होने पर उसे ललकारने के लिए कभी आस्तीनें चढ़ी ली होगीं, परन्तु उनकी प्रकृति कोमल ही थी, स्वभाव में सहनशीलता का गुण ही अधिक देखने को मिलता है। इसका उदाहरण धूमिल का संयुक्त परिवार को कई वर्षों तक एक साथ रखने से दिख जाता है जिसमें वे परिवार में भेद-भाव न करते हुए अपनी पत्नी, बच्चों, यहाँ तक कि अपने शरीर की भी चिन्ता न करते हुए हर किसी को खुश रखने का प्रयास निरन्तर करते रहे। धूमिल अपने परिवार के सदस्यों, अनुजों, बच्चों के प्रति बेहद संवेदनशील थे और अनवरत उनके भविष्य एवं खुशियों को देखते रहे। पारिवारिक दायित्त्व को धूमिल ने बचपन से लेकर जीवन के अन्तिम क्षण तक सम्भालने का प्रयास किया। धूमिल बचपन से हॉकी, फुटबाल तथा बालीबाल खेलने के शौकीन थे। गाँव के लड़कों के साथ स्कूल में उन्हें अक्सर खेलते देखा जाता था। उनके अनुज कन्हैया पाण्डेय के अनुसार वे 'जुआ खेलने की आदत से भी लाचार थे।'[17]

धूमिल में गँवई गंध की महक सदैव बनी रहती थी। उन्हें गाँव से बेहद लगाव था लेकिन दुर्भाग्यवश वे कभी गाँव रह नहीं पाये लेकिन जब भी मौका मिला किसानों से बाते करना, सामाजिक परिवर्तन का आश्वासन देना, निःस्वार्थ भाव से काम करते रहने की सलाह जरूर देते थे। धूमिल का व्यक्तित्व एक तरह से अन्तर्द्वन्द्व का व्यक्तित्व था जो समय-समय और जगह-जगह बदलता रहता था। वे कभी अल्हड़-फक्कड़ तो कभी क्रोध में प्रहार करते नजर आते थे। उनके व्यक्तित्व की छाप उनकी कविताओं में स्पष्ट देखी जा सकती है। उनकी एक अप्रकाशित कविता 'मुझे लिखो' का उदाहरण द्रष्टव्य है -

'मुझे लिखो, मैं कटी हुई अँगुलियाँ हूँ
जिसे भूख ने खा लिया है -
जिसके एक टूटे हृदय ने
खुद को जोड़ने के लिए गा दिया है।

निष्कर्षतः धूमिल का जीवन-व्यक्तित्व और साहित्य- समाज खासतौर से वर्तमान परिवेश के लिए प्रेरणादायक है। उनके अल्पायु होने की कमी उनकी कविताओं से पूरी की जा सकती है। धूमिल ने जहाँ एक ओर सामाजिक मूल्यों के पतन की बात की है, वही दूसरी ओर नवीन मूल्यों के निर्माण की अनिवार्यता भी स्थापित कर दी है।

शहरी आधुनिकता से जो संकट मानवीय संवेदनाओं पर पड़ रहे थे उनसे निहत्था जूझने की शक्ति एवं आत्मबल धूमिल समाज को देकर गये।

सन्दर्भ

1. संसद से सड़क तक - धूमिल पृ0-65
2. चालीसोत्तर कविता के हीरक हस्ताक्षर, डा0 दुर्गा प्रसाद ओझा पृ0-222-223
3. कल सुनना मुझे - धूमिल पृ0-68
4. वहीं पृ0-80
5. धूमिल की श्रेष्ठ कविताएँ, सं0 ब्रह्मदेव मिश्र पृ0-15
6. कल सुनना मुझे-धूमिल, पृ0-
7. नया प्रतीक- फरवरी 1976, पृ0-2-3
8. संसद से सड़क तक-धूमिल, पृ0-86
9. नया प्रतीक, फरवरी, 1978, पृ0-4
10. संसद से सड़क तक-धूमिल, पृ0-85
11. अलोचना, अंक, 33, पृ0-5
12. कल सुनना मुझे-धूमिल पृ0-68
13. वही, पृ0-80
14. वही, पृ0-01
15. कटघरे का कवि धूमिल, डॉ0 ग.तु.अष्टेकर, पृ0-21
16. आलोचना, अंक-33, पृ0-67
17. वही, पृ0-54

अध्याय द्वितीय

कृतित्व परिचय

साठोत्तरी हिन्दी कविता में सुदामा पाण्डेय 'धूमिल' अपने नये धारदार मुहावरे एवं सपाटबयानी के लिए काफी चर्चित रहे हैं। उनकी कविता राजनीति और विरोध की कविता है। वे अपनी कविता के माध्यम से समाज को क्या संदेश देना चाहते हैं, इसका एक निश्चित पैमाना वे तय नहीं करते, लेकिन यह तय है कि धूमिल कविता के कथ्य, प्रतीक और मुहावरों में बदलाव चाहते हैं। उनका साहित्य मुक्तिबोध और राजकमल चौधरी से भी आगे सोचने को विवश करता है उनका मानना है कि – "एक सही कविता/पहले। एक सार्थक वक्तव्य है।"[1]

धूमिल नई कविता को नकारते हुए उससे आगे की बात करना चाहते हैं। नई कविता जहाँ नये प्रयोगों, बिम्बों, प्रतीकों एवं काव्य शिल्प की बारीकीयों पर बल देती है, वही धूमिल साठोत्तरी कविता में वक्तव्य और उसकी सार्थकता पर बल देते हैं। स्वतंत्रता के बाद देश में जिन संस्थाओं एवं प्रतिष्ठानों का जन्म हुआ उनकी सामाजिक उपादेयता पर भी धूमिल सवाल खड़ा करते हैं। उनकी दृष्टि में उन संस्थानों से अब सडांध उठ रही है। वे दायित्व बोध और नूतन मूल्यों के दिशावाहक नहीं रह गये हैं। धूमिल एक मूर्तिभंजक की भाँति पुराने आभा मंडलों को ध्वस्त कर नवीनता का सृजन करना चाहते हैं।

वास्तव में धूमिल की कविताओं में जीवन जीने की जो ललक देखने को मिलती है, वह अन्य कवियों में दुर्लभ है। धूमिल ने मनुष्य को समसामयिक परिस्थितियों से संघर्ष करने का पाठ पढ़ाया है जो एक निर्भीक और जीवट कवि ही कर सकता है। यद्यपि उनकी कविताओं में ग्रामीण और शहरी मध्यमवर्गीय परिवार में बोले जाने वाले भदेस शब्दों का जमकर प्रयोग हुआ है लेकिन यह प्रयोग कवि अपनी बात सिद्ध करने और शैल्पिक भंगिमा के लिए करता है जो न चाहते हुए भी उचित लगने लगता है।

धूमिल की काव्ययात्रा लगभग एक दशक ही रही। इतने अल्प समय में कवि ने अपनी उर्वर प्रतिभा, सपाटबयानी और मुहावरेदार भाषा के माध्यम से साहित्य प्रेमियों के हृदय पर एक अमिट छाप छोड़ी है। धूमिल के काव्य में प्रश्नाकुलता भी लक्षित होती है। उन्होंने अपनी कविताओं के माध्यम से अनेक सवाल खड़े किये है। धूमिल की अल्पायु में मृत्यु से समकालीन हिन्दी कविता को निश्चित ही एक बड़ा आघात लगा। जीवन की विषमताओं से निरन्तर जूझते रहने के कारण धूमिल के जीवन काल में उनका केवल एक ही काव्य संग्रह 'संसद से सड़क तक' (1972)

प्रकाश में आया। उनके अन्य दो काव्य संग्रह 'कल सुनना मुझे' (1977) 'सुदामा पाँड़े का प्रजातंत्र (2001) उनकी मृत्यु के बाद प्रकाशित हुए। उनके काव्य संग्रहों का संक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत है -

'संसद से सड़क तक'

सन् 1972 में प्रकाशित 'संसद से सड़क तक' धूमिल के साहित्यिक जीवन काल का जीवन्त दस्तावेज है। यह पच्चीस चुनी हुई कविताओं का संकलन है। इस संग्रह की प्रत्येक कविता कवि की जागरुकता, सामयिक चेतना और समकालीन विसंगतियों-विडम्बनाओं का ज्वलन्त उदाहरण है। संग्रह की प्रथम रचना 'कविता' में समाज के पाखण्डी चेहरों की नग्नता, निर्दयता, अभावदंश, निरर्थकताबोध, व्यर्थ जुलूसबाजी तथा मानव की असहायता स्पष्ट दृष्टिगत होती है। कवि क्षुब्ध है आज की पाशविक मनोवृति से। आज का मानव विकृत मानसिकता से ग्रस्त है। आज की कविता भी बौखलाए हुए मनुष्य का एकालाप हो चुकी है। धूमिल के शब्दों में-

वह बहुत पहले की बात है
जब कहीं, किसी निर्जन में
आदिम पशुता चीखती थी और
सारा नगर चौंक पड़ता था
मगर अब -
उसे मालूम है कि कविता
घेराव में
किसी बौखलाये हुए आदमी का
संक्षिप्त एकालाप है।[2]

'जनतंत्र के सूर्योदय में' शीर्षक कविता में कवि भारतीय संविधान, अपराधिक गतिविधियों, मातृभाषा, मुर्दा इतिहास आदि के साथ ही समसामयिक विसंगतियों पर प्रहार करता नजर आता है। धूमिल अपनी कविताओं के माध्यम से व्यवस्था पर जो चोट करना चाहते हैं उसमें भाषिक शालीनता को आड़े नहीं आने देना चाहते। वे अपनी बेबाक अभिव्यक्ति में प्रतीकों का भी सहारा नहीं लेते। वे जो भी कहते हैं खुलकर कहते हैं, भाषा के भदेसपन की वे चिन्ता नहीं करते। आरम्भ में उनकी कविताओं में समीक्षकों को भदेसपन की गंध मिली लेकिन जब उन्होंने उस पर गहराई से विचार किया तो उन्हें अपनी पूर्व मान्यताएं बदलने के लिए विवश होना पड़ा। वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि बात का खुलासा करने के लिए ऐसी भाषा का प्रयोग नितान्त

आवश्यक है। मातृभाषा-राष्ट्रभाषा की उपेक्षा पर धूमिल की तड़प निम्नलिखित पंक्तियों में लक्षित होती है-

यह जानकर कि तुम्हारी मातृभाषा
उस महरी की तरह है, जो
महाजन के साथ रात-भर
सोने के लिए
एक साड़ी पर राज़ी है
सिर कटे मुर्गे की तरह फड़कते हुए,
जनतंत्र में
सुबह -
सिर्फ चमकते हुए रंगों की चालबाज़ी है।'[3]

'अकाल दर्शन' शीर्षक कविता के माध्यम से कवि समाज में 'भूख कौन उपजाता है? जैसे प्रश्न खड़ा करता है। आज का आम आदमी छलावे की जिन्दगी जी रहा है, उसका शोषण किस हद तक हो रहा है इस बात पर विचार करने की भी उसकी सामर्थ्य नहीं रह गयी है। समाज का प्रभावशाली वर्ग इसका स्पष्ट उत्तर न देते हुए शोषण-भूख की जिम्मेदारी सर्वहारा वर्ग पर ही थोप देता है। धूमिल की दृष्टि पूँजीवादी व्यवस्था की चालाकी और असलियत को उजागर करती हुई कहती है-

मैंने उसका हाथ पकड़ते हुए कहा -
'बच्चे तो बेकारी के दिनों की बरकत है'
इससे वे सहमत हैं
जो हमारी हालात पर तरस खाकर, खाने के लिए
रसद देते हैं।
उनका कहना है कि बच्चे
हमें बसंत बुनने में मदद देते हैं।[4]

'बसंत' कविता के माध्यम से कवि आम आदमी के खोखलेपन और जिम्मेदारियों से मुँह मोड़ने की ओर संकेत करता है। 'एकान्त कथा' आज की विकृत मानसिकता, नंगापन और गहरे तनाव की ओर इशारा करती है जिसमें व्यक्ति का अस्तित्व ठीक उसी प्रकार है जैसे कमरे के एकांत में उतारकर रखा बदबूदार जूता। "उस औरत की बगल में लेटकर" शीर्षक कविता के द्वारा कवि इंसानियत का नंगापन और पाशविक वृत्ति पर व्यंग्य करता है। आज मानव की सोच सामाजिक विडम्बनाओं ने बदल डाली है। 'राजकमल चौधरी' इस संग्रह की सशक्त कविता है जिसमें एक ओर

कवि सम्पूर्ण देश की दुर्दशा पर चिन्ता व्यक्त कर रहा है। तो दूसरी तरफ राजकमल के लहू उगलते शब्दों को भी 'प्रतिबिम्बित' कर रहा है। राजकमल की असामायिक मृत्यु धूमिल को सामाजिक विसंगतियों से लड़ने का साहस देती है। धूमिल से पहले राजकमल चौधरी ने सामाजिक विद्रूपताओं को नंगा करने के लिए ऐसी भाषा और शैली अपनाई थी। उस समय आलोचकों ने उनकी इस तरह की काव्य भाषा पर सवालिया निशान लगाया था, लेकिन धूमिल ने राजकमल चौधरी की काव्य भाषा का समर्थन करते हुए कहा कि कवि की कविता मनोरंजन मात्र नहीं है। वह समाज की नग्नता को उसी की भाषा में उसे परोस देना चाहते हैं। धूमिल कहते हैं "उसका मरना मुझे जीने का सही कारण देता है।" धूमिल ने आजादी को 'बीस साला बिटिया' कहा है और 'वासनाओं में खोए हुए देश को अनावृत किया है। जहाँ पर नवयुवक 'हिजड़ो की पूरी पीढ़ी और अन्धा कूप के मशालों पर बहस में मसगूल है। धूमिल शोक सभा में न जाकर राजकमल की उन कविताओं के भीतर झाँकना चाहते हैं, जहाँ 'अन्धी गलियों में नफरत के दरवाजे' खटकाये गये हैं, तथा 'वेश्याओं और गंजेड़ियों की नींद भरे जंगल' में गुप्त रोगों के इलाज की जड़ी-बूटी ढूँढ़ी गई है। राजकमल ने अन्धकारी संस्कारों की अंतरंगता को समझते हुए भटकाव की पहचान की थी किन्तु वह 'अपने लिए सही टोपियों का चुनाव न कर पाने की हालत में बौखलाकर अघोरियों की संगत में बैठ गया।[5] धूमिल ने राजकमल चौधरी के इस साहसिक समर्पण को पूरी ईमानदारी और दृढ़ता के साथ अभिव्यक्ति दी। एक उदाहरण द्रष्टव्य है-

जीभ और जाँघ के चालू भूगोल से
अलग हटकर उसकी कविता
एक ऐसी भाषा है जिसमें कहीं भी
'लेकिन' 'शायद' 'अगर' नहीं है
उसके लिए हम इत्मीनान से कह सकते हैं कि वह
एक ऐसा आदमी था जिसका मरना
कविता से बाहर नहीं है।[6]

धूमिल राजकमल चौधरी की मृत्यु से जहाँ बेहद दुःखी थे वहीं उन्हें एक नया रास्ता भी मिला जो उन कवियों को छोड़ता हुआ आगे बढ़ा जो कविता को रायल्टी समझते हैं –

मरना मुझे जीने का सही कारण देता है
जबकि वे
याने मेरे दोस्त पहिये और पाण्डुलिपियों की रायल्टी तय करने की
यह नहीं जानते होड़ में

कि वह
किस शहर के अँधेरे में जाकर
गायब हो गया है।[7]

धूमिल की चर्चित कविताओं में 'मोचीराम' को लिया जा सकता है। इस कविता में कवि ने 'जूता' और 'आदमी' को एक नया मुहावरा दिया है। मोचीराम के लिए हर एक आदमी मात्र एक अदद जूते के अलावा कुछ नहीं है। उसके अन्दर एक सजग सामाजिक चिन्तक बैठा है जो एहसास कराता है कि व्यक्ति को असलियत और नियति के प्रति सजग भूमिका निभानी चाहिए-

मुझे हर वक्त खयाल रहता है कि जूते
और पेशे के बीच
कहीं-न-कहीं एक अदद आदमी है
जिस पर टाँके पड़ते हैं
जो जूते से झाँकती हुई अँगुली की चोट
छाती पर
हथौड़े की तरह सहता है।[8]

उक्त कविता में धूमिल ने आज के नकाबपोश व्यक्तियों की असलियत को भी उघारा है जो सभ्यता का लिबास पहने सफेदपोश बने हैं। उनके घिनौने आचरण का पर्दाफाश करता हुआ कवि कहता है-

न वह अक्लमन्द है
न वक्त का पाबन्द है
उसकी आखों में लालच है
हाथों में घड़ी है
उसे कहीं जाना नहीं है
मगर चेहरे पर
बड़ी हड़बड़ी है
वह कोई बनिया है
या बिसाती है
मगर रोब ऐसा कि हिटलर का नाती है
'इशे बाँद्धो, उशे काट्टो, हियाँ ठोक्को, वहाँ पीट्टो
घिश्शा दो, अइशा चमकाओ, जुत्ते को ऐना बनाओ
''''ओफ्फ ! बड़ी गर्मी है' रुमाल से हवा

करता है, मौसम के नाम पर बिसूरता है
सड़क पर 'आतियों-जातियों ' को
बानर की तरह घूरता है
गरज यह कि घण्टे-भर खटवाता है
मगर नामा देते वक्त
साफ 'नट' जाता है
'शरीफों को लूटते हो' वह गुर्राता है
और कुछ सिक्के फेंककर
आगे बढ़ जाता है।[9]

'मकान' शीर्षक कविता के माध्यम से धूमिल मकान की मनोहर चित्रशाला को वैवाहिक जीवन की साजिश और बन्धनों के बोझ से दबे व्यक्ति को पालतू जानवर के रूप में देखते हैं। मकान को बनाने एवं छोटी-छोटी सुख सुविधाओं को जुटाने के चक्कर में व्यक्ति ऐसे दलदल में फँस जाता है जहाँ से निकल पाना उसके लिए नामुमकिन हो जाता है। व्यभिचार, दरिद्रता, गन्दगी, भोग, विलासिता, बिमारियों आदि को सहते-सहते व्यक्ति नमक के ढेले की तरह घुल जाता है-

मैंने देखा है
किस तरह मकानों की आड़ में
छिपे हुए मकान
दरवाज़ों में चाकू छिपाकर
आदमी का इन्तज़ार करते हैं
'स्वागत है' आहिस्ता-आहिस्ता
किसी आदमखोर के जबड़े की तरह
उस मकान का फाटक खुल जाता है
और देखते-ही देखते
एक समूचा और मुस्कराता हुआ आदमी
उसके भीतर नमक के ढेले-सा
घुल जाता है।[10]

सपाटबयानी, वैयक्तिकता एवं व्यंग्यात्मकता की कविताओं का दौर सन् साठ तक लगभग समाप्त हो गया था। राजकमल चौधरी, धूमिल जैसे कवि व्यंग्य के स्थान पर विसंगति बोध की कविता लिखने लगे थे। कविताओं में व्यंग्य मात्र तिलमिलाता है किन्तु विसंगतिबोध से निरर्थकता एवं फूहड़पन का तीव्र एहसास होता है। समकालीन कविता का कथ्य लगभग यही है, चाहे जितनी फूहड़ता, कुरूपता, वीभत्सता, गन्दगी

और झुझंलाहट हो लेकिन वे रचना-प्रक्रिया का अनिवार्य अंग बना लिये गये हैं। आज का रचनाकार जो कुछ देखता है, जीता है और भोगता है उसे उसी रूप में रेखांकित कर देना चाहता है। संग्रह की 'नक्सलबाड़ी', शीर्षक कविता इसका उदाहरण है जिसमें कवि वामपंथ का अनावश्यक विरोध करने वालों से तीखा प्रश्न करता है और 'नक्सलबाड़ी जैसे आन्दोलनों के द्वारा उन्हें सचेत भी करता है क्योंकि यदि नफरत की आग को सही सोच और दिशा न दी गई तो वह अव्यवस्था का कारण बन सकती है। कवि का विद्रोही तेवर दूसरे प्रजातन्त्र की खोज करना चाहता है -

मुझे अपनी कविताओं के लिए
दूसरे प्रजातंत्र की तलाश है।।

कवि का मानना है कि बुभुक्षित कभी संघर्ष नहीं कर सकता है। प्रतिपक्षी से मुकाबले के लिए पेट भरना अनिवार्य है -

इस खाली पेट के सिवा
तुम्हारे पास वह कौन-सी सुरक्षित
जगह है, जहाँ खड़े होकर
तुम अपने दाहिने हाथ की
साजिश के खिलाफ लड़ोगे?[12]

वर्तमान समाज में यदि आर्थिक विसंगति और एकाधिकारी प्रवृत्ति बनी रहती है तो संघर्ष अनिवार्य है। नक्सलवादी आंदोलन इसी वर्चस्व के विरूद्ध एक खूनी तिलमिलाहट है। ऐसे वर्ग संघर्ष से आगाह करता हुआ कवि कहता है -

खबरदार !
उसने तुम्हारे परिवार को
नफरत के उस मुकाम पर ला खड़ा किया है
कि कल तुम्हारा सबसे छोटा लड़का भी
तुम्हारे पड़ोसी का गला
अचानक,
अपनी स्लेट से काट सकता है
क्या मैंने गलत कहा?[13]

आज की सामाजिक विडम्बना का चित्रण करते हुए धूमिल कहते हैं कि आज अपराधी स्वच्छन्द घूम रहे हैं। आज का आम आदमी बाह्य परिवेश से आँख बंद कर चुपचाप जीवन जीना चाहता है उसमें दायित्वबोध एवं सामाजिक मूल्यबोध की संचेतना नहीं है। धूमिल के शब्दों में-

हर अच्छे नागरिक की तरह
ख़तरे का सायरन बजते ही
मैंने अपनी खिड़कियों के पर्दे गिरा दिये हैं
खतरा-इन दिनों -
बाहर की नहीं बल्कि भीतर की रोशनी से है।[14]

धूमिल शहरी एवं ग्रामीण दोनों सभ्यताओं की नग्नता को देख चुके थे लेकिन उनके मुखौटों को समाज के सामने लाने एवं अपराधियों के नाम बताने से डरते थे क्योंकि उन्हें डर था कि उनकी कविता और उसका अन्त तय हो जायेगा। इस समाज में हमेशा विजय झूठ की होती आयी है। सत्य साबित करने के लिए गवाही की जरूरत होती है।

इसी पशोपेश की कविता है 'मुनासिब कार्यवाही'। 'अकेला कवि कटघरा होता है' वह कुछ भी साबित नहीं कर सकता क्योंकि -

वह जानता है कि आजकल
शहर कोतवाल की नीयत
और हथकड़ी का नम्बर एक है।[15]

ऐसे में एक कवि और उसकी कविता का वजूद कितनी देर टिकेगा यह कहना मुश्किल है। आज समाज पूरी तरह से दूषित व्यवस्था के हाथों में है। यह व्यवस्था उस दरिन्दे की भाँति है जो मर तो चुका है किन्तु उसके नाखून अभी भी जिन्दा हैं। धूमिल समकालीन कवियों को आगाह करते हुए कहते हैं कि -

वक्त बहुत कम है।
इसलिए कविता पर बहस
शुरू करो
और शहर को अपनी ओर झुका लो
क्योंकि असली अपराधी का
नाम लेने के लिए
कविता, सिर्फ उतनी ही देर सुरक्षित है
जितनी देर, कीमा होने से पहले,
कसाई के ठीहे और तनी हुई गड़ाँस के बीच
बोटी सुरक्षित है।[16]

'भाषा की रात' इस संकलन की महत्त्वपूर्ण रचना है जिसमें कवि सामाजिक कटु यथार्थ को रेखांकित करता है। वह दो टूक शब्दों में स्पष्ट कर देना चाहता है कि

आदर्श, प्यार, मानवता सब मखौल हैं सिर्फ नफरत ही मानव का आभूषण है। आज समाज में चारों ओर नरभक्षी स्वार्थी और अवसरवादी भेड़ियों का वर्चस्व है। कवि उन चालाकों का जिक्र करता है 'जिनकी नरभक्षी जीभ ने पसीने का स्वाद चख लिया है।' ये अपनी भाषाओं में लोगों को इतना बहला देते हैं कि व्यक्ति गुस्से में अपनी अँगुलियों को ही चबा डालता है। कवि के शब्दों में –

भूख की जगह
भाषा को रख दिया है
उन्हें मालूम है कि भूख से
भागा हुआ आदमी
भाषा की ओर जायेगा
उन्होंने समझ लिया है कि –
एक भुक्खड़ जब गुस्सा करेगा,
अपनी ही अँगुलियाँ
चबायेगा।[17]

भाषा की तह तक जाने के बाद धूमिल का यह निष्कर्ष था कि भाषा को ठीक करने से पहले आदमी को ठीक करो। धूमिल ने जनसामान्य एवं देश की विसंगतियों को व्यक्त करने के लिए हर भारतीय भाषा के कवियों को जागरुक किया और यह संदेश देने का प्रयास किया कि भारत की विसंगतियों को यदि हर भाषा में आक्रोश के साथ व्यक्त किया जाये तो उसका प्रभाव अधिक पड़ेगा। सही अर्थों में कवि–देशभक्त वही है जो अपनी कविताओं के माध्यम से समाज–राष्ट्र का उद्धार करने में मदद करे –

अपने देश की मिट्टी को आँख की
पुतली समझता है
वर्ना, रोटी के टुकड़े पर
किसी भी भाषा में देश का नाम लिखकर
खिला देने से
कोई देशभक्त नहीं होता।[18]

'पटकथा' इस संग्रह की अन्तिम कविता है किन्तु यह कविता एक तरह से धूमिल के साहित्यिक–सृजन के मील का पत्थर है। लगभग पैंतीस पृष्ठों की यह रचना कवि के आशावादी जीवन से लेकर नैराश्य और अनास्था तक के सफर को तय करती है। सन् 1972 ई0 में प्रकाशित इस रचना के माध्यम से धूमिल ने भारत की गुलामी से लेकर आजादी के लगभग 20 सालों को सजीव रूप में चित्रित कर दिया

है। यह एक तरह की आत्मकथात्मक शैली में लिखित रचना है जिसमें कवि देश की दशा और दिशा के बारे स्वयं प्रश्न करता है और उसका उत्तर देकर अपने को संतुष्ट भी करता है।

एक उदाहरण द्रष्टव्य है –

मैंने सोचा !
क्योंकि शब्द और स्वाद के बीच
अपनी भूख को जिन्दा रखना
जीभ और जाँघ के स्थानिक भूगोल की
वाजिब मजबूरी है।
मैंने सोचा और संस्कार के
वर्जित इलाकों में
अपनी आदतों का शिकार
होने से पहले ही
बाहर चला आया।[19]

उक्त कविता के माध्यम से कवि भारत की आजादी को विस्तृत फलक पर बड़े ही उत्साह के साथ चित्रित करता है। उसे लगता है कि हम पूर्ण आजाद हो गये हैं यह धरती–आसमान अब हमारा हो गया है। जनता खुशहाल रहेगी क्योंकि अब जनता की सत्ता होगी। देश की आजादी की लहर उसके खून में बिजली की भाँति दौड़ने लगी। घर की सारी बत्तियाँ उसने जला दीं, पुरानी तस्वीरें दीवारों से उतार दीं और मन ही मन खुशहाल भारत का सपना बुन डाला–

अब कोई बच्चा
भूखा रहकर स्कूल नहीं जायेगा
अब कोई छत बारिश में
नहीं टपकेगी।
अब कोई आदमी कपड़ों की लाचारी में
अपना नंगा चेहरा नहीं पहनेगा
अब कोई दवा के अभाव में
घुट–घुटकर नहीं मरेगा
अब कोई किसी की रोटी नहीं छीनेगा
कोई किसी को नंगा नहीं करेगा
अब यह जमीन अपनी है
आसमान अपना है।[20]

कवि का यह स्वप्न आजादी के बाद साकार नहीं हुआ। देश के कर्णधार पंचवर्षीय योजनाओं को कागजी फाइलों पर ही निपटाते रहे। नेताओं के खोखले आश्वासन और दिवास्वप्न ही आम आदमी को मिलते रहे। अपनी जमीन अपना आसमान का सपना टूटने लगा, जनता में घोर निराशा छाने लगी। इस बचे-खुचे सपने को भारत-चीन युद्ध, भारत-पाक युद्ध ने और तोड़ डाला। भारत चीन से हार गया क्योंकि बन्दूकों के कारखानों में जूते बनते रहे। इतिहास की सबसे बड़ी दुखद घटना ताशकन्द समझौते के रूप में हुई जिसके नीचे एक शान्ति यात्री की लाश थी। यह बात सर्वविदित हो गई थी कि श्री लालबहादुर शास्त्री की संदिग्ध मौत ताशकन्द में उस वक्त हुई जब वे समझौते के लिए रूस में थे। धूमिल ने इस भयानक घटना को रेखांकित करते हुए कहा –

जब दुनिया के स्याह और सफेद चेहरों ने
विस्मय से देखा कि ताशकन्द में
समझौते की सफेद चादर के नीचे
एक शांति-यात्री की लाश थी
और अब यह किसी पौराणिक कथा के
उपसंहार की तरह है कि इस देश में
रोशनी उन पहाड़ों से आयी थी
जहाँ मेरे पड़ोसी ने मात
खायी थी।[21]

भारत का आम आदमी यह नहीं समझ पा रहा था कि देश के आजाद होने के बाद उसे क्या मिला? जिधर देखो भ्रष्टाचार, अमानवीयता, विसंगतियाँ और घोर निराशा, व कुण्ठा छायी थी। डॉ. युद्धवीर धवन के शब्दों में "पटकथा का कवि जनतंत्र की असमर्थता और नौकरशाही के अहसास से शुरू होकर, भारतीय संविधान, चुनावों की निरर्थकता, राजनीतिक विघटन, दल-बदल, अखबारों की साजिश, बुद्धिजीवियों की नपुंसकता की बात करता हुआ आम आदमी की यातना के लिए जनतंत्र को ही उत्तरदायी ठहराता है।[22]

धूमिल इस विडम्बना से काफी आहत हैं। शोषितों को और शोषित होते देख जनतंत्र पर प्रहार करते हुए वे कहते हैं कि देश का संविधान और उसके पुरोधा अपराधियों का पृष्ठ-पोषण करने में लगे हैं। आज जनतंत्र मखौल बनकर रह गया है –

दरअस्ल, अपने यहाँ जनतंत्र
एक ऐसा तमाशा है

जिसकी जान
मदारी की भाषा है।[23]

देश में अपराध बढ़ रहे हैं और अपराधियों का पोषण देश के नेताओं द्वारा हो रहा है –

गरज यह है कि अपराध
अपने यहाँ एक ऐसा सदाबहार फूल है
जो आत्मीयता की खाद पर
लाल-भड़क फूलता है
मैंने देखा कि इस जनतांत्रिक जंगल में
हर तरफ हत्याओं के नीचे से निकलते हैं
हरे-हरे हाथ, और पेड़ों पर
पत्तों की जुबान बनकर लटक जाते हैं
वे ऐसी भाषा बोलते हैं जिसे सुनकर
नागरिकता की गोधूलि में
घर लौटते हुए मुसाफिर
अपना रास्ता भटक जाते हैं।[24]

सामाजिक सरोकार के कवि धूमिल का अनुभूति जगत बहुत सीमित है। 'संसद से सड़क तक' काव्य संग्रह में उनकी एक-दो कविताएं पढ़ लेने के बाद आगे पढ़ने पर कोई-विचलन', कोई पृथकता महसूस नहीं होती। लगता है एक लम्बी कविता है जिसके हिस्से अलग-अलग कर उन पर भिन्न-भिन्न शीर्षक लिख दिये गये हैं जो कवि की एक ही मनः स्थिति को प्रमुखता देते हैं। उनके साथ यह अक्सर होता है कि वे विभिन्न मूडो-मनोदशाओं तथा जीवन स्थितियों में एक सामान्य मानव की तरह नहीं रम पाते। अतः वे मुख्य मनः स्थिति या स्थाई मनोभाव (क्रांति की मनोदशा) को अन्य स्थितियों से पुष्ट नहीं कर पाते। एकरूपता और वैविध्य का अभाव धूमिल को विकसित नहीं होने देता।[25]

संक्षेप में 'संसद से सड़क तक' धूमिल का बहुआयामी काव्य है जिसमें कवि ने सामयिक स्थिति की गहनता से परख की है। कवि की पैनी दृष्टि से समाज की कोई समस्या ओझल नहीं हुई है जहाँ कहीं भी उसे नासूर दिखाई पड़ा उसमें नश्तर लगाने से कवि नहीं चूका है।

कल सुनना मुझे

धूमिल का दूसरा काव्य संग्रह उनकी मृत्यु के बाद सन् 1977 में युगबोध

प्रकाशन वाराणसी से प्रकाशित हुआ। विवेच्य संग्रह में धूमिल की सैंतीस कविताएं संग्रहीत हैं। इस संग्रह में डॉ. विद्यानिवास मिश्र ने प्रस्तावना और राजशेखर ने 'मरणोत्तर धूमिल : एक कथा-यात्रा' शीर्षक से धूमिल के जीवनानुभवों और कविताओं को बारीकी से परखने की कोशिश की है। इस संग्रह में 'भाषा की रात' में-धूमिल की भूमिका के अन्तर्गत धूमिल की कविता, भाषा और शिल्प विषयक विचारों को प्रस्तुत किया गया है। धूमिल के शब्दों में "ऐसा क्यों है कि ज्यादातर लोग कविता से नहीं कविता के शिल्प से ऊब जाते हैं और सवाल जब समूची कविता को बदलने का है, वे महज शिल्प बदल देते हैं, गोया नींद में करवट बदल ली।[26] धूमिल की कविता भाषा में आदमी होने की तलाश है। धूमिल के शब्दों में-

छायावाद के कवि शब्दों को तोल कर रखते थे,
प्रयोगवाद के कवि शब्दों को टटोल कर रखते थे,
नई कविता के कवि शब्दों को गोल कर रखते थे,
सन् साठ के बाद के कवि शब्दों को खोल कर रखते हैं।[27]

प्रस्तुत संग्रह की पहली कविता है 'जवाहर लाल नेहरू की मृत्यु पर' जिसमें कवि ने देश के देदीप्यमान पुरुष पं. जवाहर लाल नेहरू की मृत्यु पर अपनी संवेदनायें व्यक्त करते हुए उन्हें युग पुरुष के रूप में रेखांकित करता है। अपने पूर्ववर्ती संग्रह 'संसद से सड़क तक' में धूमिल, नेहरू के कट्टर आलोचक हैं, किन्तु संग्रह की इस कविता में नेहरू के प्रति उनकी धारणा में बदलाव आया है। वे उन्हें 'वीर जवाहर' कह कर सम्बोधित करते हैं और उनकी मृत्यु को भी एक बार झुठलाने की चेष्टा करते हैं। उनकी दृष्टि में नेहरू मरे नहीं, मरकर भी अमर हो गये -

अरे सत्य यह नहीं, महज
अफवाह है।
अभी अभी तो हम
विकास के अभियानों में जुड़े हुए
आगे बढ़े, किन्तु फूलों से चमन हमारा भरा नहीं है
रूको हवाओं
समाचार के पीछे, मत हमको दौड़ाओ
अभी हमारा वीर जवाहर मरा नहीं है।[28]

'किस्सा जनतंत्र' शीर्षक कविता के माध्यम से धूमिल ने देश के ग्रामीण अंचल में रहने वाले किसानों-मजदूरों की वर्तमान स्थिति का अंकन किया है। आज अनेक घर ऐसे हैं जिनमें दो वक्त की रोटी नसीब नहीं हो रही है। ऐसे में वह करछुल,

चिमटा, तवा और खाली चूल्हे से ही वार्तालाप करता रहता है। समाज में व्याप्त भूख और दैन्यता को रेखांकित करते हुए कवि कहता है -

उसके आगे थाली आती है
कुल रोटी तीन
खाने से पहले मुँह दुब्बर
पेट-भर
पानी पीता है और लजाता है
कुल रोटी तीन
पहले उसे थाली खाती है
फिर वह रोटी खाता है।[29]

'दस्तक' शीर्षक कविता में कवि घुटन और अनास्था से भरे इस वातावरण में आस्था की तरफ झुकता नजर आता है। उसे लगता है कि सामाजिक विडम्बना के दरवाजे को तोड़कर एक सार्थक रोशनी आयेगी जो अन्धकार को दूर कर देगी। अपनी इस उम्मीद को रेखांकित करते धूमिल कहते हैं -

हम न देखें
लेकिन अन्धकार वर्ष को चीर कर
प्रकाश की लचीली बाँह
हमें छूती है
हम न कहें-किसी से
लेकिन अपरिचित भी जानता है
उजले केशों वाली रोशनी ने
जब भी दस्तक दी है
दरवाजे खुलते हैं।[30]

धूमिल का काव्य अति यथार्थ के धरातल पर टिका है, कहीं कोई लाग-लपेट वह नहीं करते। जहाँ जिस शब्द का प्रयोग होना है वहाँ उसी का प्रयोग करते हैं, फिर वह चाहे जितना भदेस हो। समकालीन समाज को ऐसे ही कवियों की आवश्यकता भी है जो कल्पना लोक में विचरण कराने की अपेक्षा कम शब्दों में यथा स्थिति से रूबरू करा दे। आज जब आम आदमी देश की दशा से परेशान है, उसकी आलोचना प्रत्यालोचना में जुटा है और वह ऐसे परिवेश से ऊब कर कहीं अन्यत्र पलायन करना चाहता है। ऐसे में धूमिल बड़ी इमानदारी से कहते हैं -

अन्य लोगों की तरह
मैं इतना कृतघ्न नहीं कि उस जमीन को-धिक्कार दूँ

जिस पर मेरा जन्म खड़ा है
मेरे लिए मेरा देश –
जितना बड़ा है : उतना बड़ा है।[31]

धूमिल की कविताओं में आक्रोश है, विद्रोह है लेकिन नपुंसकता, कायरता न उनके व्यक्तित्व में है और न उनकी कविताओं में। वे पूरे वेग और साहस के साथ लड़ते नजर आते हैं। धूमिल उन समकालीन कवियों के पक्षधर नजर आते हैं जो समस्याओं को खड़ा करते हैं और बेबाक शब्दों में उसका समाधान प्रस्तुत करते हैं। उनका मानना है कि तमाम समस्याओं का केन्द्र बिन्दु 'अस्वस्थ सामाजिकता' है। इसलिए उस सामाजिक अस्वस्थता को जड़ से उखाड़ देना चाहिए। कवि समाज में फैली दिशाहीनता और किंकर्तव्यविमूढ़ता के कुहासे को ही छांट देना चाहता है। इसके लिए जरूरी है आम आदमी को संघर्ष के लिए जागरुक कराने की। बिना संघर्ष के इन विडम्बनाओं से मुक्ति मिलना सम्भव नहीं है। जरूरत है तो सिर्फ जुनून को आग की शक्ल देने की। एक उदाहरण द्रष्टव्य है –

नहीं . . . इस तरह चेहरा
मत सिकोड़ो और न कन्धे ही
उचकाओ
मुझे मालूम है – सबूत के लिए
तुम कह सकते हो कि खून
बह रहा है।
लेकिन इतना ही काफी नहीं है
और खून का रंग लाल है
असली सवाल है यह जानना
कि बहता हुआ खून क्या कह रहा है . . .
और सबूत के लिए यदि तुम
देखना ही चाहते हो
तो चलो मेरे साथ
मैं तुम्हें दिखलाता हूँ भाषा के जंगल में
कविता का वह वर्जित प्रदेश
जहाँ कायरता –
एक खाली तमंचा फेंक कर
भाग गई है और साहस

चंद पके हुए बालों के साथ
आगे बढ़ गया है –
अंधेरे में।[32]

संग्रह की कविता 'आतिश के अनार-सी वह लड़की' के माध्यम से धूमिल ने बेगम आरा के राष्ट्र प्रेम, दृढ़ निश्चय और देश की अस्मिता के लिए आत्मोत्सर्ग को रेखांकित किया है जिसने आतंतायी टैंक के नीचे खुद को मानवबम के रूप में डाल दिया था। वहीं दूसरी ओर देश के नौजवानों को साहस के नये तेवर से परिचित भी कराया है। आज देश में पुरुषार्थ अपंग हो चुका है, नवयुवकों-छात्रों को 'संक्रमण रोग' ने ग्रसित कर लिया है। राष्ट्र के कर्णधार 'किश्तियों की खोज' में भटक रहें हैं। 'शरीर की बिक्री में माहिर' नपुंसको ने चारो ओर जाल बिछा रखा है। चारो तरफ विकृत मानसिकता फैली है। ऐसे में एक संवेदनशील कवि सिर्फ खुदकुशी कर सकता है। धूमिल अपनी लेखनी के माध्यम से, अपने आक्रोशित विचारों के द्वारा नवयुवकों को आक्रोश का जुनून पढ़ाने में जुटे हैं। वे चाहते हैं कि आने वाला समय विकृतियों के विरूद्ध आग का काम करे। धूमिल के शब्दों में –

एक हाथ जो नाजुक जरूर था लेकिन बेहद सख्त था –
आजाद अनुभवों की लकीर को पूरब की ओर आगे तक खींच रहा था
और लोग चकित थे यह देखकर कि एक नन्हा गुलाब
किस तरह लोहे के पहाड़ को अपनी मुठ्ठी में भींच रहा था
ठीक इसी तरह होता है
जवानी जब भी फैसले लेती है
गुस्सा जब भी सही जुनून से उमड़ता है
हम साहस के एक नये तेवर से परिचित होते हैं
तब हमें आग के लिए
दूसरा नाम ढूँढ़ना नहीं पड़ता है।[33]

उक्त कविता में आगे कवि रोशन आरा के त्याग को एक मिसाल के रूप में रेखांकित करते हुए हजारों जिन्दा विचारों को नयी शक्ल देता है –

बीस सेबों की मिठास से भरा हुआ यौवन
जब फटता है तो न सिर्फ टैंक टूटते हैं
बल्कि खून के छीटे जहाँ-जहाँ पड़ते हैं
बंजर और परती पर आजादी के कल्ले फूटते हैं
और ओ प्यारी लड़की !

कल तू जहाँ आतिश के अनार की तरह फूटकर
बिखर गई है ठीक वहीं से हम
आजादी की वर्षगाँठ का जश्न शुरू करते हैं।[34]

धूमिल ने अपने जीवनकाल में संघर्ष को ही प्राथमिकता दी है। अपने जीवन की अंतिम कविता में भी वे लोहे का स्वाद पूछ रहे हैं। ऐसे कवि सामाजिक परिर्वतन के प्रति कटिबद्ध होते हैं। समसामयिक सामाजिक-राजनीतिक परिवेश में फैली विसंगतियों को धूमिल लेखनीबद्ध करना चाहते हैं इसके लिए उन्हें देश के ठेकेदारों पर वार करना है जो 'समन्वयवाद' का नारा देते हैं। धूमिल की भाषा लताड़ने वाली है, उनके व्यंग्य कचोटने वाले हैं। धूमिल चाहते हैं कि भाषा के माध्यम से ऐसा प्रहार किया जाये कि यह 'फरेबी' समुदाय बौखला उठे। इसीलिए कुछ विद्वानों ने उनकी भाषा को भदेस, बातूनीपन और अखबारी भाषा कहा। अनेक लोग उन्हें नक्शेबाज कवि कहते हैं लेकिन वास्तविकता यह नहीं है। धूमिल सदैव मानवीय संवेदनाओं को समझने का प्रयत्न करते हैं। जो कुंठा, यातना या नंगापन समाज में फैला है धूमिल उसे खुली आँखों से देखते हैं और पाखंडी समाज की वास्तविकता को लोगों के सामने लाना चाहते हैं। 'एक कविता कुछ सूचनायें' शीर्षक कविता के माध्यम से कवि समाज के निर्माणकर्त्ताओं और समन्वयवादियों का नग्न रूप रेखांकित करता हुआ कहता है -

सबसे अधिक हत्याएँ
समन्वयवादियों ने की।
दार्शनिकों ने
सबसे अधिक जेवर खरीदा।
भीड़ ने कल बहुत पीटा -
उस आदमी को
जिसका मुख-ईसा से मिलता था।

कवि आगे कहता है -

सबके सब -
रोशनी की आँच से
कुछ ऐसे बचते हैं
कि सूरज को पानी से -
रचते हैं।
बुद्ध की आँख से खून चू रहा था
नगर के मुख्य चौरस्ते पर

शोक प्रस्ताव पारित हुए,
हिजड़ो ने भाषण दिए
लिंग-बोध पर,
वेश्याओं ने कविताएँ पढ़ी –
आत्मशोध पर।[35]

धूमिल के पहले संग्रह का नाम है 'संसद से सड़क तक' लेकिन इस नाम की कोई कविता उनके तीनों संग्रहों में देखने को नहीं मिलती, लेकिन एक बात निश्चित रूप से कही जा सकती है कि धूमिल की कविताओं के कथ्य संसद, सड़क अर्थात् अभिजात वर्ग और आम आदमी की मूलभूत आवश्यकता 'रोटी' के इर्द-गिर्द ही घूमती नजर आती है। धूमिल की कविताओं की एक बड़ी विशेषता यह भी है कि वे प्रगतिवादी खाँचे में पूरी तरह फिट नहीं हो पाती हैं, क्योंकि प्रगतिवादी कविता में समस्यायें ज्यादा खड़ी की गई हैं लेकिन धूमिल की कविताओं में खड़ी समस्याओं का हल भी खोजने का प्रयास दिखाई देता है। 'रोटी और संसद' शीर्षक कविता के माध्यम से कवि अनाज की राजनीति पर पैनी दृष्टि रखते हुए उन राजनीतिज्ञों, पर करारा व्यंग्य करता है जो जमाखोरों-साहूकारों का साथ देते हैं। सरकार ऐसे कानून बनाती है जिससे अनाज आम आदमी के पास न पहुँचकर साहूकारों के गोदामों में जमा हो जाता है। कहने का तात्पर्य है कि सरकारी नीतियाँ जनता का फायदा पहुँचाने के लिए बनाई जाती हैं जबकि असली फायदा किसी और का होता है। वर्तमान लोकतांत्रिक व्यवस्था पर चोट करता हुआ कवि कहता है –

एक आदमी
रोटी बेलता है
एक आदमी रोटी खाता है
एक तीसरा आदमी भी है
जो न रोटी बेलता है, न रोटी खाता है
वह सिर्फ रोटी से खेलता है
मैं पूछता हूँ –
"यह तीसरा आदमी कौन है ?'
मेरे देश की संसद मौन है"।36

कविता यदि सहजानुभूति से लिखी गई है तो उसमें समसामयिक परिवेश का यथार्थ आसानी से देखा जा सकता है। धूमिल के पूर्ववर्ती और समसामयिक अधिकांश कवियों ने जहाँ व्यवस्था के सामने घुटने टेक दिये थे वहीं धूमिल ने अपनी कविताओं के माध्यम से जनमानस को अन्धकार से निकालने का कार्य किया। उनका मानना था

कि क्रांति के लिए एकजुटता और साहस दोनों की जरूरत पड़ती है। अस्वीकार का मतलब मूल तत्व की तलाश है न कि उसे नकार कर दिशाहीन होने की। धूमिल की कविताओं में अस्वीकार है लेकिन दिशाहीनता का बोध न के बराबर है। वे तोड़ने की अपेक्षा जोड़ने में अधिक विश्वास रखते हैं। 'शब्द जहाँ सक्रिय हैं' शीर्षक कविता का उदाहरण द्रष्टव्य है –

मैं सिर्फ इतना भर जानता हूँ कि शब्द
जहाँ सक्रिय हैं, भूख का सिलसिला
भाई-चारे की जमीन पर
छापामार सीटियाँ बजाने लगा है
और तब ही से भाईयो! मेरे पुर वासियों!
मेरे पड़ोस की चुनमुन चिरैया
अपना घोंसला लोहे की जालियों से
बुनने लगी है और मेरी छप्पर का
एक नन्हा तिनका
जंगल की शाख होने का सपना
देखने लगा है।[37]

सामाजिक विशेषताओं के अतिरिक्त धूमिल के काव्य में प्रकृति के भी रम्य चित्र हैं, जो तत्कालीन विसंगतियों एवं दयनीय स्थितियों को रेखांकित करती हैं–

लेकिन कविता चमड़ा नहीं है
इसीलिये कविता में गाती है घास
आदमी की जुबान से तिनका भर आगे बढ़कर
सदियों से अपने रौंदे जाने का इतिहास
सहना ही जीवन है जीवन का जीवन से द्वन्द है
मेरी हरियाली में मिट्टी की करुणा का छन्द है'
और यही कारण है कि दलबदल करते उतावले
बादलों को चाबुक से पीटकर
जीवन रस गारती है। दौड़-दौड़ सारे आकाश में
बिजली –
सदियों से रौंदीं हुई घास को पुकारती है।[38]

संग्रह की 'दिनचर्या' शीर्षक कविता के माध्यम से कवि मध्यमवर्गीय समाज को रेखांकित करना चाहता है। आज आदमी के पास एक दूसरे से मिलने, एक साथ बैठकर दो बातें करने का समय नहीं है। आज 'अकेलापन' का अजगर आम आदमी

को निगलता जा रहा है। व्यक्ति आत्मरति में लिप्त है। अलगाव से वह कुण्ठित होता जा रहा है, टूटता जा रहा है। सारे भावनात्मक रिश्ते बिखर रहे हैं लेकिन वह कुछ कर नही पा रहा है अपने आप को अपाहिज महसूस कर रहा है। धूमिल सामाजिक सम्बन्धों के बिखराव एवं अलगाव को इस कविता के माध्यम से रेखांकित करते हुए कहते हैं -

दुपहर जब कहीं बर्फ़ नहीं
होगी और न झड़ती हुई पत्तियाँ
आकाश नीला और स्वच्छ
होगा नगर
क्रेन के पट्टे में झूलता हुआ
हम मोड़ पर मिलेंगे और
एक दूसरे से ईर्ष्या करेंगे
रात जब युद्ध एक गीत-पंक्ति की तरह
प्रिय होगा हम वायलिन को
रोते हुए सुनेंगे
अपने टूटे संबंधों पर सोचेंगे
दुःखी होगें।[39]

समकालीन कवियों में धूमिल ही एक ऐसे कवि हैं जो गाँव और शहर की हकीकत की गहराई को एक साथ आँक सकते हैं। नागार्जुन के बाद ग्रामीण संस्कृति और शहरी कल्चर की धूमिल ने एक साथ पड़ताल की है। ''बहुत दिनो तक चूल्हा रोया'' के बाद धूमिल कहते हैं - ''करछुल-बटलोही से बतियाती है और चिमटा तवे से मचलता है''। धूमिल ने जिस आत्मीयता एवं गहराई से ग्रामीण अंचल के यथार्थ को रेखांकित किया है उतनी ही नजदीकी से शहरी जीवन के यथार्थ को नगर कथा, में चित्रित किया है।

सभी दुखी हैं -
सबकी वीर्य वाहिनी नलियाँ
साइकिलों से रगड़-रगड़ कर
पिर्चीं हुई हैं
दौड़ रहे सब -
सम जड़त्व की विषम प्रतिक्रिया :
सबकी आँखें सजल
मुठ्ठियाँ भिची हुई हैं।[40]

समकालीन समाज में कहीं भी निश्छल प्रेम देखने को नहीं मिलता। हर तरफ ईर्ष्या-द्वेष है, अलगाव और घृणा का भाव भरा है। ऐसे में एक संवेदनशील कवि अपने कर्म का निर्वाह ठीक तरह से नहीं कर पाता। धूमिल ने इस समाज को नजदीक से देखा है, उसकी बेबसी को महसूस किया है, उन्होंने प्रजातंत्र के विरूद्ध 'खुदकुशी की लटकती रस्सी देखी है' रोटी से खेलते हुए आदमी को देखा है और विवश आदमी के रौंदे जाने का इतिहास समझा है। मानवीय मूल्यों को विघटित होते हुए देखा है। आज मानव अजनबीपन, परायापन एवं अकेलेपन के कारण टूटता जा रहा है। उसका इस तरह टूटना मृत्युबोध को बढ़ावा दे रहा है। यही विडंबनाएँ आज के व्यक्ति की नियति बन गई हैं। वह क्षणिक प्रेम के लिए दर-दर भटक रहा है। धूमिल के शब्दों में -

> कहीं देखकर बलात्कार की कोई घटना
> उतनी देर तड़पती रहती नहीं धमनियाँ
> जितनी उस क्षण -
> जब दो परिचित-सी आकृतियाँ
> नीची आँखें किये, परस्पर
> बिना कहे कुछ -
> पास-पास से गुजर गई हों।
> दुःख होता है अगर किसी की
> मिली नौकरी छूट गई हो
> लेकिन उतना नहीं
> कि जितना -
> बार-बार सुनने पर भी फटकार
> आदमी, लौट काम पर
> फिर आया हो -
> कालर फटी कमीज पहनकर।[41]

'उसके बारे में' शीर्षक कविता के माध्यम से घूमिल अपने अर्न्तमन की पीड़ा का मंथन करते नजर आते हैं। देश-दुनिया की पीड़ा को कविता के माध्यम से व्यक्त करते-करते धूमिल टूटते नजर आते हैं। उनका मन अन्दर से कितना आहत है इसका अनुमान इन पंक्तियों से लगाया जा सकता है-

> पता नहीं कितनी रिक्तता थी -
> जो भी मुझसे होकर गुजरा-रीत गया
> पता नहीं कितना अंधकार था मुझमें

मैं सारी उम्र चमकने की कोशिश में
बीत गया।
भलमनसाहत
और मानसून के बीच खड़ा मैं
आक्सीजन का कर्जदार हूँ
मैं अपनी व्यवस्थाओं में
बीमार हूँ।[42]

'खून के बारे में कविता' शीर्षक के माध्यम से धूमिल 'मैं' के आत्मसंघर्ष को पहचानने का प्रयत्न करते हैं। उनकी यह कविता उनके आत्मान्वेषी रूप का परिचय कराती है जिसमें कवि अपने अहं को खोजते हुए निरन्तर गतिशील रहता है। उसकी यही गतिशीलता उसे कविता लिखने के लिए प्रेरित करती रहती है। कवि यथार्थ से जब अहं को जोड़ता है तो पलायन का भाव जागृत होने लगता है और वह सजगता के साथ इससे लड़ने को पुनः तैयार हो जाता है। कवि के शब्दों में –

उसने मुझसे बुदबुदाकर कहा –
"कवि हो! इस फौरी धावे में साथ दो।
और सुनो! कविता मारती नहीं,
जाने बचाने की कोशिश में
पहल करती है।"[43]

कवि के लिए कविता साध्य है साधन नहीं। कोई भी संवेदनशील कवि मात्र कोरी कल्पना के आधार पर साहित्य निर्माण नहीं करता बल्कि वह जिस शब्द पुष्प का निर्माण करता है उसे अपने खून से सींचता है। कवि कर्म में लीन होने के बाद व्यक्ति अपने मनस्ताप को, दुख को भुलाकर दूसरे के दुख का निस्तारण करने लगता है। उसके सामने सबसे बड़ी समस्या तब उत्पन्न होने लगती है जब उसे व्यावहारिकता के साथ संवेदना का सामन्जस्य करना पड़ता है। कवि के लिए यह सबसे पीड़ादायक क्षण होता है। सामाजिक दुख-दर्द को अपनी भावनाओं के माध्यम से बाँधते-बाँधते उसकी आन्तरिक भावनाएँ स्वतः मरणासन्न स्थिति में पहुँच जाती है। समाज का यथार्थ-व्यावहारिक परिवेश ही कवि का कथ्य बन जाता है और यही कथ्य उसकी अभिव्यक्ति का माध्यम बन जाता है। इन्हीं भावों को रूपायित करते हुए 'मैं हूँ' शीर्षक कविता के माध्यम से धूमिल कहते हैं –

कवि एक लय है
थकान में गिरी हुयी

क्या तुमने सुना?
और तुम्हें खुशी है
मगर मत भूलो
कि कवि
व्यावहारिकता की
बटी हुयी रस्सी से झूलती हुयी
संवेदना की खुदकुशी है।[44]

'कविता के द्वारा हस्तक्षेप' शीर्षक कविता के माध्यम से धूमिल समसामयिक परिस्थितियों को रेखांकित करना चाहते हैं जिसमें आज का मानव कुण्ठाग्रस्त है। वह सामाजिक गन्दगी और खासकर यौन कुण्ठा में दब कर रह गया है। आज कविता में जो कुरूपता, फूहड़पन और असंगत शब्दों का प्रयोग देखने को मिलता है वो अस्वीकार के दर्शन का परिणाम है। धूमिल आज की इस व्यवस्था और विरूपता को लक्ष्य न मानकर उसमें क्रान्ति और विद्रोह का भाव लोगों में लाना चाहते हैं। उनका मानना है कि यदि परिस्थितियों से मानव संघर्ष करे तो उसको किसी अस्त्र-शस्त्र की जरूरत नहीं पड़ेगी बल्कि आत्मबल की दृढ़ता से व्यवस्था में बदलाव सम्भव है। उनका दृढ़ विश्वास है कि लोगों का हृदय-परिवर्तन अवश्य होगा। धूमिल के शब्दों में -

मेरे शब्द उसे जिन्दगी के कई स्तरों पर खुद को
पुनरीक्षण का अवसर देते हैं, वह बीते हुए वर्षों
को एक-एक कर खोलता है।
वर्तमान को और पारदर्शी पाता है उसके आर-पार
देखता है। और इस तरह अकेला आदमी भी
अनेक कालों और अनेक सम्बन्धों में एक समूह
में बदल जाता है। मेरी कविता इस अकेले को
सामूहिकता देती है और समूह को साहसिकता।[45]

सातवें दशक में आधुनिकतावाद से अपना कदम आगे बढ़ते हुए उत्तरआधुनिकतावाद ने साहित्य की दहलीज पर दस्तक दी। वर्तमान परिवेश में उत्तरआधुनिकतावाद साहित्य, समाज और शासन व्यवस्था पर पूरी तरह हावी है। आज का मानव पुरातन मूल्यों को एक सिरे से खारिज करता है और नित-नूतन पाश्चात्य संस्कृति को अपनाने के लिए कटिबद्ध नजर आता है। ऐसी स्थिति में कवियों का अन्तर्विरोधी होना स्वाभाविक है। धूमिल की कविताओं में भी प्राचीन मूल्यों के टूटने की खनक सुनाई पड़ती है, दरार साफ दिखाई पड़ती हैं। कवि इस पशोपेश में घिरा

है कि भविष्य में विघटित मूल्यों के स्थान पर नवीन मूल्यों की स्थापना कैसे हो? कुछ उम्मीद उनको है तभी तो वे कहते हैं –

कल सुनना मुझे।
आज मैं लड़ रहा हूँ।[46]

समकालीन कवियों में धूमिल एक मात्र ऐसे कवि हैं जो परिवेश और व्यवस्था के दबाव के बावजूद भी निर्भीक लड़ाई लड़ रहे हैं। उनकी लड़ाई मात्र वाचिक नहीं है बल्कि स्वाभाविक नजर आती है। उनकी कविताओं में वह संकल्प स्पष्ट देखने को मिलता है जो समाज में हताशा, झुंझलाहट और कुण्ठा को दूर कर सकती है। धूमिल का साहित्य नकारात्मक न होकर स्वस्थ, वैचारिक और व्यवस्था के प्रति विरोध का सूचक है। कवि के शब्दों में –

बच्चे भूखे हैं :
माँ के चेहरे पत्थर,
पिता जैसे काठः अपनी ही आग में
जले हैं ज्यों सारा घर,
पेशेवर गुलाबों की हँसी ने
खारिज कर दिया है बसंत
और कविता की नसों में
बहता हुआ खून
जरूरत की जगह
जहमत बन गया है।[47]

संग्रह की 'पराजय बोध' शीर्षक कविता के माध्यम से धूमिल अपने अन्र्तमन को टटोलना चाहते हैं क्योंकि यह 'मैं' ही समाज में सतत गतिशील रहता है और यथार्थ से जूझने की शक्ति एकत्रित करता है। कवि का 'मैं' अन्वेषणवादी है वह पलायन नहीं चाहता बल्कि अपनी पूरी निष्ठा एवं शक्ति से सामाजिक विकृतियों को भगाना चाहता है। दुर्भाग्य यह है कि कवि समाज में अपने आप को अकेला महसूस करता है, कोई उसका साथ नहीं देता। यही कारण है कि कभी-कभी कवि अपने आप को पराजित महसूस करने लगता है –

मैं अपनी टाँगों में झूल रहा हूँ
मैं अपनी ऊबकाइयों पर फूल रहा हूँ
मेरे हाथ काले हैं
मेरी आँखों में जाले हैं

मेरी जुबान चुप है
ओठों पर ताले हैं।
टहनों में जाड़ा है
मेरा जीवन लार टपकती हुई नेकर का नाड़ा है।
मुझे मेरे दर्द ने पिछाड़ा है।[48]

धूमिल के चिन्तन को नवीन दिशा देने में 'मृत्यु चिन्ता' कविता काफी हद तक कारगर है जिसमें कवि यह मानता है कि अतीत कभी मरता नहीं। इतिहास से सीखे बिना वर्तमान को अच्छी तरह जिया नहीं जा सकता। आज का मानव स्वार्थों में जकड़ा है और विनाश से दूर नहीं है। आज मानव चाँद पर पहुँच रहा है लेकिन मानवता दिन पर दिन समाप्त होती जा रही है। कवि कहता है -

सारे इतिहास रहे खेत,
अंगुली के पोरों के नीचे तड़पा किये
ऐंठती अंतड़ियों से -
भरे हुए पेट।[49]

उक्त कविता के माध्यम से कवि विसंगतियों को अर्थवत्ता प्रदान करता है। धूमिल का मानना है कि आज के मानव में तथ्यात्मक शून्यता विद्यमान है। उसकी यह शून्यता मात्र व्यक्ति-व्यक्ति के बीच नहीं बल्कि व्यक्ति और समाज के बीच भी देखने को मिलती है। कवि अपनी कविताओं के माध्यम से उसका यह अजनबीपन दूर करना चाहता है किन्तु उसे निराशा ही हाथ लगती है। आज का मानव न इतिहास में विश्वास करता है और न वर्तमान में जीने का साहस रख पाता है। इन्हीं परिवेशगत विवशताओं से कवि झुंझला जाता है -

बच्चों की आँखों में
छाया अभिशाप की
बूढ़ों के चेहरों पर
परछाईं पाप की।[50]

'गाँव का कीर्तन' शीर्षक कविता इस संग्रह की उत्कृष्ट कविताओं में से एक है। समसामयिक कविता के समय में धूमिल वर्तमान व्यवस्था एवं मानवीय संत्रास से पूरी तरह जुड़े हैं। धूमिल इकलौते कवि हैं जो पूरी व्यवस्था को बदल डालना चाहते हैं लेकिन व्यवस्था इतनी विकृत हो चुकी है कि कवि हर जगह अपने को असमर्थ पाता है। उसकी यह असमर्थता उसके अहं पर चोट करती है। धूमिल ऐसी स्थिति में भी आशा को छोड़ते नहीं भविष्य में इनसे मुक्ति का मार्ग खोजने में जुटे रहते हैं।

मेरे गाँव में
वही आलस्य, वही ऊब
वही कलह, वही तटस्थता
हर जगह और हर रोज....
और मैं कुछ नहीं कर सकता
मैं कुछ नहीं कर सकता
मैं सोचता हूँ और तभी
एक खिलखिलाहट मेरी बगल में उभरती है
चालाक गिलहरियों का पीछा करती हुई दुधमुंही 'तिनी'
(मेरी बच्ची) किलक उठती है
मैं चौंक पड़ता हूँ -
'नहीं इन दिनों बात-बात पर
इस तरह उदास होना
ठीक नहीं है
मैं देखता हूँ - मुझे बरजती हुयी
उसके चेहरे पर एक खुली हुई हँसी है-
जिसमें एक भी दाँत
 शरीक नहीं है।[51]

संग्रह की अंतिम कविता धूमिल ने अपनी मृत्यु से लगभग एक महीना पहले (14-1-1975) लिखी थी। एक तरफ वे ट्यूमर जैसी भीषण बीमारी से जूझ रहे थे तो दूसरी तरफ सामाजिक व्यवस्था से लड़ते नजर आ रहे थे। ऐसा माना जाता है कि दुखद अनुभूतियाँ ही काव्य का माध्यम बनती हैं क्योंकि सच्चे अर्थों में कवि तभी काव्य का सृजन कर सकता है जब वह उसे स्वयं भोग रहा हो। धूमिल का सम्पूर्ण जीवन यंत्रणा को वहन करते ही बीता। इसीलिए उन्होंने कविता को मनोरंजन न मानकर मानवीय उद्‌देश्य माना। अन्तिम कविता में भी वे लोहे का स्वाद अर्थात् संघर्ष से दो-दो हाथ करने को तैयार हैं -

शब्द किस तरह
कविता बनते हैं
इसे देखो
अक्षरों के बीच गिरे हुए
आदमी को पढ़ो
क्या तुमने सुना है कि यह

लोहे कि आवाज है या
मिट्टी में गिरे खून
का रंग।
लोहे का स्वाद
लोहार से मत पूछो
उस घोड़े से पूछो
जिसके मुँह में लगाम है।[52]

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि धूमिल का यह काव्य संग्रह "कल सुनना मुझे" अपने नाम की सार्थकता सिद्ध करता है। पूरे संग्रह में धूमिल अपने संवेदनशील कवि दायित्व से बँधे नजर आते हैं। उनका मानना है कि "आज नयी कविता बदनाम है, अपने शिल्पगत प्रयोग के लिए नहीं, वस्तुगत जीवन मूल्यों के लिए नहीं, बल्कि खंडित बिम्बों के लिए अस्पष्ट, नितान्त असंगत एवं बौद्धिक प्रतीकों के लिए, अपनी गद्यात्मक एकलयता की वृत्ति के लिए और साथ ही घुटन में ऊब कर, शहीद होने? दिखलावट के लिए।"[53]

सुदामा पाँड़े का प्रजातंत्र

"न कोई प्रजा है
न कोई तंत्र है
यह आदमी के खिलाफ
आदमी का खुलासा
षड्यंत्र है।"

उक्त पंक्तियाँ नवें दशक के साहित्य में काफी चर्चित रहीं। धूमिल की मृत्यु के बाद सन् 2001 में वाणी प्रकाशन से प्रकाशित 'सुदामा पाँड़े का प्रजातंत्र' उनकी तीसरी एवं अन्तिम काव्यकृति है जिसमें कवि ने ग्रामीण संस्कृति के चित्रण के साथ ही आदमी का आदमी के प्रति विद्वेष और खुले षडयंत्र का पर्दाफाश किया है। समकालीन कविता के कवियों ने अपनी धारदार, बेबाक लेखनी के माध्यम से गिरते हुए मानवीय मूल्यों को काव्य फलक पर उकेरने में लेश मात्र संकोच नहीं किया है। साहित्य में सदैव मानवीय मूल्यों के उन्नयन और उनके सशक्त चित्रण के प्रयास होते रहे हैं। कवियों ने सांस्कृतिक ह्रास और मूल्यहीनता की स्थितियों का भी प्रतीकात्मक चित्रण किया है। किन्तु सन् साठ के बाद की कविताओं में कवि सामाजिक सरोकारों पर सीधे प्रहार करता नजर आता है। नागार्जुन, मुक्तिबोध, राजकमल चौधरी और धूमिल के साहित्य में अमानवीयता को लेकर एक बेचैनी, छटपटाहट साफ दिखाई देती है। शायद इसीलिए

इनकी कविताओं में कुछ भदेस शब्दों का प्रयोग भी हुआ जिसे कवि की विवशता कहा जा सकता है। नागार्जुन द्वारा तत्कालीन नेताओं के प्रति कहे गये एब्सर्ड शब्द हों या धूमिल द्वारा स्त्री-पुरुष के जननांगों से सम्बन्धित शब्दों के खुले प्रयोग हों जो साहित्य में वर्जित है, इस बात के प्रमाण हैं कि कवि जब व्यवस्था से तिलमिलाता है तो अनायास ही एब्सर्ड शब्दों का प्रयोग न चाहकर भी कर बैठता है। धूमिल की भाषा से असहमत होते हुए भी डॉ. विद्यानिवास मिश्र उनका पक्ष लेते हुए कहते हैं – "लोग मुझसे सवाल करते हैं कि धूमिल की कविता में यौन प्रतीकों का इस तरह इस्तेमाल क्या आवश्यक है, क्या उचित है? मैं एक ही उत्तर देता हूँ कि शायद धूमिल के गाँव वाले मन को बात सीधी तौर पर कहने के लिए लाचारी से इतना आक्रामक होना पड़ा है। मैं उनकी भाषा का न पक्षधर हूँ न स्त्री के शरीर का इस तरह भाषिक उपयोग करने को काव्योचित मानता हूँ परन्तु जो कवि फरेब से, हर तरह के फरेब से एकदम अफना गया हो वह शहरी नारी-गरिमा के फरेब को भी दूर फेंक देता है, शायद उसका उत्साह विस्थापित है, पर उसका ईमान अपनी जगह पर है और यही बात हमारे लिए अधिक महत्वपूर्ण होनी चाहिए। धूमिल के काव्य में काम नहीं है, कामुकता के प्रति गहरी वितृष्णा है। वह पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र की तरह गरिमा के लिए कुछ तीखा होना चाहता है। धूमिल के काव्य की जाँच इसीलिए धूमिल की वास्तविक चिंता की दृष्टि से की जानी शेष है, भाषा के तेवर की, विचार की तीक्ष्णता की चर्चा तो बहुत हो चुकी है।"[54] यदि गहन चिंतन के आधार पर देखा जाये तो धूमिल के काव्य में मूल्यों से लड़ने की होड़ बराबर दृष्टिगत होगी। वे जीवन की सार्थकता के पक्षधर हैं न कि एक गंजेड़ी की भाँति फूंकते रहने की आदत के। उनका मानना है कि जनतंत्र की नींव पूरी तरह से खोखली हो गयी है। आज आदमी-आदमी के प्रति खुला षडयंत्र कर रहा है। 'न्यू गरीब हिन्दू होटल' कविता इसका जीवन्त उदाहरण है जिसमें घीसा की दुर्दशा और 'महराज' की आन्तरिक पीड़ा उभर कर सामने आयी है –

> और फिर रात में
> जब चीजें एक सार्वजनिक लय में
> दुहराई जाने लगती हैं
> होटल की माँद में
> थकाहारा
> बर्तन माँजने वाला घीसा –
> अपने से दस-बारह साल छोटे
> लड़के की

गुदगर देह से सटा हुआ
जलेबियों का सपना देखता है
मालिक का सीझा हुआ चेहरा
जैसे बासी रोटी पर किसी
शरारती महराज ने
दो आँखें बना दी हों
थाली आते ही मेरी टाँगों के नीचे
एक कुत्ता आ जाता है
कुर्सी से कौर तक फिर वही कुकुरबू
रोटी खरी है बीच में
पर किनारे पर कच्ची है
सब्जी में नमक ज्यादा है
पता नहीं होटल के मालिक का पसीना है या
महराज के आँसू।[55]

डॉ. विद्यानिवास मिश्र ने अपने व्यक्तव्य में कहा है कि 'धूमिल फरेब से उफना गये थे।' यह सच है कि गाँव का साधारण सा कवि या व्यक्ति शहरी दाव-पेच से अनभिज्ञ हैं और ऐसे में धूमिल जैसा कवि जो सच्चाई, ईमानदारी और मेहनत को इंसान का वजूद मानता हो और उस इंसान या इंसानियत के साथ छल-छद्म किया जाये तो उसका दम घुटने लगता है। उसे लगता है कि पूरा समाज ही जहरीला हो गया है, हवायें काली पड़ गयी हैं और कवि की भाषा को समझने का माद्दा किसी में नहीं है। 'कविता के भ्रम में' शीर्षक कविता में समाज और राजनीति के परदे के पीछे का घिनौना रूप रेखांकित करता हुआ कवि कहता है -

जहाँ हवा काली है। जीने का
जोखम है। सपनों का
वयस्क लोक तंत्र है। आदमी
होने का स्वाद है।
मैं थोड़ा और आगे जाना चाहता हूँ
जहाँ जीवन अब भी तिरस्कृत है
संसद की कार्यवाही से निकाले गये वाक्य की तरह।
अच्छा तो विदा मित्र! विदा
जाओ,
लेकिन मैं जानता हूँ कि कल

जब भाषा की तरह तंगी में ऊबते हुए
अपने शहर में वापस आओगे
तुम मुझे गाओगे जैसे अकाल में
खेत गाये जाते हैं
और अभियोग की भाषा के लिए
टटोलते फिरोगे वे चेहरे
जो कविता के भ्रम में
जीने के पहले ही
परदे के पीछे
नींद में मर चुके हैं।[56]

धूमिल के साहित्य में मानवीय-मूल्यों से जूझने का प्रश्न मुखर है। वे परिस्थितियों से समझौता कर लेना कायरता समझते हैं। उनका मानना है कि कविता करना कवि की मजबूरी नहीं बल्कि जन-जीवन की पीड़ा को रेखांकित करने वाला दस्तावेज है। उनकी कविता भाषा का पेट भरने की हिमायती नहीं है बल्कि वह सामाजिक विकृतियों-विडम्बनाओं को बेनकाब करके जनता को जाग्रत करना चाहती है। धूमिल शोषण और वैषम्य की तह में जाकर असली भेड़ियों को सामने लाना चाहते हैं। 'संयुक्त मोर्चा' शीर्षक कविता के माध्यम से कवि ने 'जन' को बड़ी गम्भीरता के साथ अंकित किया है –

मैं.....ज....हूँ....ज
और तुम....न हो
हम दोनों मिल कर जन बनते हैं

आगे कवि इस 'जन' को बेनकाब करता हुआ कहता है –

कल तक वे चेहरे को चाकू
और चाकू को चेहरा कहते थे
और हम इसे बुत की तरह सहते थे।
लेकिन यह देखो हम किस तरह
एक-दूसरे के सामने
दुश्मन की तरह खड़े हैं
एक अदद बटन और चुटकी भर
आटे की सुविधा ने
हमें बागी बना दिया है

जब कि हमारी पीठ बुरी तरह
महसूसती है कि हमारी रीढ़ पर
दाँत भेड़ियों के गड़े हैं।[57]

धूमिल 'कर्फ्यू में एक घन्टे की छूट' शीर्षक कविता के माध्यम से प्यार और गुस्से के साथ यौवन के दो पहलू सामने रखते हैं जिनमें एक तरफ सपनो की तस्वीर है तो दूसरी तरफ जनतंत्र को समझने की जिज्ञासा -

यौवन ऐसा सिक्का है
जिसके एक ओर प्यार
और दूसरी ओर गुस्सा छपा है।
कम से कम यह एक सबूत है
उसके जिन्दा रहने का
कि वह 'लोकसभा-भवन' की ओर जा रहा था।
महज लाल स्कार्फ के साथ
जिसे उसने झण्डे की तरह उठा रखा था।
और अभी उसके
अपने 'मतदान' के खिलाफ
होने का सवाल ही नहीं उठता था
क्योंकि वह एक साथ चुन लेना चाहता है -
तितलियाँ, स्कार्फ, होंठ और फूलों
के जादुई रंग।[58]

'घर में वापसी' कविता के माध्यम से कवि एक निम्नवर्गीय परिवार को रेखांकित करता है जिसके घर में पाँच जोड़ी आँखे हैं और इन आँखों के बीच में एक दीवार है 'पेशेवर गरीब' की। उस गरीब की जिसके खून में इतना भी 'लोहा' नहीं है कि एक ताली बनवा सके। धूमिल कहते हैं-

'रिश्तों को सोचते हुए
आपस में प्यार से बोलते,
कहते कि ये पिता हैं,
यह प्यारी माँ हैं यह मेरी बेटी है
पत्नी को थोड़ा अलग
करते-तू मेरी
हमबिस्तर नहीं-मेरी
हमसफर है,

हम थोड़ा जोखिम उठाते
दीवार पर हाथ रखते और कहते
यह मेरा घर है।[59]

धूमिल के इस संग्रह की कविताओं को पढ़ने के बाद एक बात स्पष्ट हो जाती है कि उनके पिछले दोनों संग्रहों में जो तड़प, बेचैनी और घुटन जनतंत्र के खिलाफ है वही उनकी इस संग्रह की 'लोकतंत्र' शीर्षक कविता में भी देखने को मिलती है। धूमिल अपने पिछले संग्रहों में इस बात का रेखांकन करते हैं कि सच को पहचानना विपक्ष में चले जाना है। 'लोकतंत्र' आज दीवारों पर महज नारा बनकर रह गया है। धूमिल उस नारे को उभारना चाहते हैं और जनमानस में बेचैनी और तिलमिलाहट उपस्थित करना चाहते हैं, उनका मानना है कि -

वे घर की दीवारों पर नारे
लिख रहे थे
मैंने अपनी दीवारें जेब में रख लीं
उन्होंने मेरी पीठ पर नारा लिख दिया
मैंने अपनी पीठ कुर्सी को दे दी
और अब पेट की बारी थी
मैं खुश था कि मुझे मंदाग्नि की बीमारी थी
और यह पेट है
मैंने उसे सहलाया
मेरा पेट
समाजवाद की भेंट है
और अपने विरोधियों से कहला भेजा
वे आएँ-और साहस है तो लिखें,
मैं तैयार हूँ
न मैं पेट हूँ
न दीवार हूँ
न पीठ हूँ
अब मैं विचार हूँ।[60]

उक्त कविता के माध्यम से धूमिल शासक वर्ग से लड़ते नजर आते हैं उनका मानना है कि पेट, दीवार और पीठ बिक सकती है लेकिन विचार सदैव जीवित रहते हैं। आज जरूरत है कवियों को, चिंतको को और समाज सेवियों को कि वे अपने विचार न बेचें। यदि विचार जनमानस को शासक वर्ग के खिलाफ खड़ा करने में सफल

रहा तो कवि का कर्म भी सफल माना जायेगा। आजादी के दूसरे दशक के बाद ही शासक वर्ग का असली चेहरा सामने आने लगा था और उसके प्रति बेचैनी, खीझ और विक्षोभ जन मानस में भरने लगा था। कवियों में उनके खिलाफ मोर्चा लेने का साहस नहीं था। उनमें उस साहसिक वृत्ति का आभाव था जो कबीर, नार्गाजुन, मुक्तिबोध, राज कमल चौधरी आदि कवियों में मिलता है। सातवें दशक के कवियों की दृष्टि में शब्द के अभिधार्थ में बदलाव अपरिहार्य है। इसलिए उन्होंने पुराने शब्दों को तराश कर उसे नुकीला एवं धारदार बनाया। 'बीसवीं सदी का सातवाँ दशक' शीर्षक कविता कुछ हद तक इसे रेखांकित करने में सफल नजर आती है। कवि के शब्दों में –

> ''बीसवीं सदी के सातवें दशक के
> आखिरी दिनों में
> जब 'क' का मतलब 'क' नहीं रह गया था
> अपने सामने की चाय को
> अपराध होने से बचाते हुए एक आदमी
> अपने मुवक्किल के लिए लाजिम भाषा बोलता है–
> ''मत भूलो कि तुम्हारा हर आँसू
> अपराधियों के लिए चोट का
> दूसरा दरवाजा खोलता है।''
> पैंट की बटन खोलते हुए आदमी से कहा
> तमीज के लिए अब दूसरा खेल
> शुरू करो।[61]

धूमिल का मानना है कि जनतंत्र एक विचार है, समाज का सपना है। लेकिन जनतंत्र में सच बोलने वाला बहुत देर तक सुरक्षित नहीं है। आज कविता करना 'करो या मरो की' स्थिति में कवि को खड़ा कर देता है। धूमिल उन कवियों में हैं जिन्होंने इस उक्ति को जीवन भर जिया है, वे मानते हैं कि यदि आप कविता कर रहे हैं तो आपमें इतना माद्दा चाहिये कि आम को आम और चाकू को चाकू कह सकें। केवल जनता का मनोरंजन करना, आँसू की कुछ बूँदें गिरा देना ही कवि कर्म नहीं है, उनका मानना है कि जनता के हर आँसू अपराधियों के लिए नये दरवाजे की खोज करते हैं।

प्रस्तुत संग्रह की 'जनतंत्रः एक हत्या सन्दर्भ' शीर्षक कविता सन्तोष कुमार कपूरिया की हत्या के सन्दर्भ में लिखी गयी है। उक्त कविता में कवि ने अनेक प्रश्न उछाले हैं। उन प्रश्नों को जानने के बाद ऐसे-ऐसे उत्तर सामने आते हैं जिनका वर्णन

करना लगभग असंभव सा है क्योंकि धूमिल के प्रश्नों का उत्तर ढूढ़ना तो आसान है लेकिन समाधान करना उतना ही मुश्किल है। शायद ऐसे प्रश्नों को उठाना और जनमानस को तिलमिला देना ही धूमिल की कविता की सबसे बड़ी विशेषता है। कवि कहता है –

खून के थक्के में तलफता हुआ
जब वह युवा जिस्म
गिर पड़ा रास्ते के ठीक बीचोंबीच
उस वक्त जनतंत्र किधर था?
दम तोड़ती हुई साँसों के
सिरहाने या पैताने . . .
उस वक्त जनतंत्र किधर था?
बार-बार मुझसे पूछती है वह बालिग लड़की
कविता उसका नाम है
उसकी आँखों में शक है
आँसू है
आँसू में तैरता हुआ फितना सवाल
रह-रहकर
मेरा चेहरा टटोलता है
उस वक्त जनतंत्र किधर था?[62]

इसी कविता का एक अन्य उदाहरण द्रष्टव्य है जिसमें किसी हत्या के बाद आम आदमी की खामोशी ओर दैनिक कार्यकलापों के प्रति उसका रूझान दिखाई पड़ता है –

ठहरा हुआ जीवन शुरू होता है
मैं कमरे से बाहर आता हूँ
सड़क पर वक्त है, सुबह है
अफवाहें हैं
झुर्रियाँ हैं, धुन्ध भरे चेहरों को
आँकती निगाहें हैं
थकी हुई छड़ी है
युवकों के उत्तेजित चेहरे हैं
असमंजस में हिलते हुए हाथ हैं
जिनसे अभी-अभी छटकर
गिर पड़ती है एक परखनली

जिसमें यौवन का तरल
जीवन द्रव भरा था।
क्या कहा? क्या कहा?
क्या यहीं कोई अभी ऐसे भी मरा था?[63]

'मुक्ति का रास्ता' शीर्षक कविता के माध्यम से धूमिल ने सामाजिक परिवेश और उस परिवेश में रह रहे मानव के बदलते मूल्यों को उरेहने का सफल प्रयास किया है। कवि कहता है कि समय बदल गया है, आँसू का स्थान बदले की आग ने ले लिया है। कविता का रास्ता भी अब कठिन हो गया है। समाज में लूट, आगजनी, बलात्कार जैसी अमानवीय घटनाएँ तेजी से बढ़ रहीं हैं ऐसे में अनेक तथाकथित कवियों को मैदान छोड़ना पड़ रहा है। आज कविता लिखने का साहस यदि है तभी कविता सम्भव है क्योंकि कवि को जनतंत्र के दुश्मनों से लड़ना है । उनके षडयंत्रों का पर्दाफाश करना है। धूमिल ने तो इसका रास्ता ढूँढ़ लिया है। वे कहते हैं –

फिर आगजनी, लूट। लेकिन क्या लगा था
आततायियों के हाथ? नफरत की आँच ने
चन्द खाली झोपड़ों को राख किया था।
और वह स्त्री आदिवासी? इसके बाद
तुम जानते ही हो शब्द शस्त्र बन गये हैं
और अगवा बंदूक की निशानदेही पर
कविता ने ढूँढ़ लिया है अपनी मुक्ति का रास्ता
दुश्मन की छाती के खून भरे छेद से।[64]

दहशत, भय, उत्पीड़न और विकृतियों से ग्रस्त समाज को धूमिल ने अपने काव्य के माध्यम से अनेक स्थानों पर अनेक तरीके से अभिव्यक्ति दी है –

कहीं कोई भाषा नहीं
भूख के केन्द्र में।[65]

एक अन्य उदाहरण द्रष्टव्य है–

रोशनी जहाँ सबसे तेज है;
दुश्मन वहीं रहते हैं।[66]

धूमिल का मानना है कि देश आजाद हो गया। लोकतंत्र स्थापित हो गया। संविधान बन गया और जनता को उनके अधिकार, स्वतंत्रता और कर्तव्यबोध से अवगत करा दिया गया लेकिन सच क्या है, क्या सचमुच जनतंत्र है इस पर वे बराबर प्रश्न खड़े करते रहे हैं। वयस्क मतदान, चुनावी अधिकार और जनता की

सरकार यह तो महज दिवा स्वप्न बन कर रह गया है। इसकी असलियत बयाँ करने वालों की संख्या न के बराबर है। धूमिल उस नकार को बयाँ करने में लेशमात्र पीछे नजर नहीं आते। समाज की विकृतियों को, शासनतंत्र की असलियत को पाठक के सामने लाने में धूमिल को कोई भय नहीं है क्योंकि वे पहले ही मान चुके हैं कि 'सच बोलने वाला बहुत देर तक नहीं टिकता' और वे इसके लिए सर्वदा तैयार नजर आते हैं। 'मतदाता' शीर्षक कविता के माध्यम से कवि जनता को आगाह करता हुआ कहता है –

> "कहने का मतलब यह है कि भाइयो!
> जनतंत्र जनता से नहीं
> घर की जंग से शुरू होता है"
> और फिर पहली बार यह जानकर
> वह खुश होगा की मतपेटी में
> मत-पत्र के साथ वह अपनी समझ नहीं डाल आया
> आज भी –
> अगली लड़ाई के लिए उसके दाँत और नाखून
> एक रोटी पर सुरक्षित हैं।[67]

आज के इस विसंगतिपूर्ण समाज में व्यक्ति के पास खोने के लिए कुछ बचा ही नहीं है। 'सिलसिला' शीर्षक कविता में धूमिल कहते हैं 'तुम्हारे पास खोने के लिए, जंजीरों के सिवा कुछ भी नहीं है'। जनता आज जाग्रत हो चुकी है। उसके मन में एक चिंगारी शासन तंत्र के विरुद्ध है, आवश्यकता है उसे एक हवा देने की। कवि आम आदमी को ललकारता है कि पेड़ की जगह जड़ों को बाहर निकालो, नहीं तो सब कुछ समाप्त हो जायेगा। हक की लड़ाई में यदि तुम आगे आते हो तो इतना अवश्य कह सकते हो –

> इससे इतना तो होगा ही
> कि रुख़ानी की मामूली-सी गवाही पर
> तुम दरवाजे को अपना दरवाजा
> और मेज को
> अपनी मेज कह सक़ोगे।[68]

विवेच्य संग्रह की दो कविताओं के माध्यम से इस बात को प्रमाणित किया जा सकता है कि धूमिल की बेचैनी सिर्फ शासन-सत्ता वर्ग के प्रति ही नहीं थी अपितु वे सामाजिक बिखराव के माध्यम से पारिवारिक एवं प्राकृतिक बिखराव को लेकर भी चिंतित थे। संग्रह की वे दो रचना हैं 'घर में वापसी' और 'हरित क्रांति'। 'घर में

वापसी' शीर्षक कविता के माध्यम से कवि इंसानी सरोकारों को रेखांकित करता है जिसमें माँ, पिता, पत्नी के सम्बन्धों, आपसी तनाव, पारस्परिक कलह, उनके बीच वैमनस्य की उठती दीवार आदि के कारण पारम्परिक पारिवारिक वातावरण प्रदूषित हो गया है। आज के सामाजिक मूल्यों में जो बिखराव आ रहा है उसकी ओर इंगित करता हुआ कवि कहता है -

मेरे घर में पाँच जोड़ी आँखें हैं
माँ की आँखें पड़ाव से पहले ही
तीर्थ-यात्रा की बस के
दो पंचर पहिए हैं।
पिता की आँखें -
लोहसाँय की ठण्डी सलाखे हैं
बेटी की आँखें मन्दिर में दीवट पर
जलते घी के
दो दीए हैं।
पत्नी की आँखें आँखें नहीं
हाथ हैं, मुझे थामे हुए हैं

कवि आगे कहता है -

रिश्तों को सोचते हुए
आपस में प्यार से बोलते,
कहते कि ये पिता हैं,
यह प्यारी माँ है, यह मेरी बेटी है
पत्नी को थोड़ा अलग
करते-तू मेरा
हमबिस्तर नहीं-मेरी
हमसफर है,
हम थोड़ा जोखिम उठाते
दीवार पर हाथ रखते और कहते
यह मेरा घर है।[69]

प्रस्तुत संग्रह में सरकारों द्वारा घोषित हरित क्रांति की वास्तविकता से भी कवि आम आदमी को परिचित कराता है। इस शीर्षक की तीनों कविताओं के माध्यम से कवि अन्न उत्पादक किसान की बेबसी, विपन्नता और हरित क्रांति की यथार्थ स्थिति से पाठकों को परिचित कराता है। अधोलिखित कविता में धूमिल ने किसान और

शोषक व्यापारी के बीच के वर्ग-वैषम्य को उभारने का प्रयास किया है -

इतनी हरियाली के बावजूद
अर्जुन को नहीं मालूम उसके गालों की हड्डी क्यों
उभर आयी है। उसके बाल
सफेद क्यों हो गये हैं।
लोहे की छोटी-सी दुकान में बैठा हुआ आदमी
सोना और इतने बड़े खेत में खड़ा आदमी
मिट्टी क्यों हो गया है।[70]

धूमिल की रचनाओं के बारे में अधिकांश आलोचकों का यह मानना है कि उन्होंने यौन प्रतीकों का प्रयोग अधिक किया है जो साहित्यिक दृष्टि से आपत्तिजनक है। नारी के प्रति उनके साहित्य में प्रयुक्त ऐसे प्रतीक वितृष्णा से भरे दिखाई देते हैं लेकिन ऐसा हर जगह नहीं है। उनके साहित्य में नारी माँ और पत्नी के रूप में भी चित्रित हुई है। नारी के इन रूपों में धूमिल आत्मीय सम्बंध स्थापित करते हुए दिखायी देते हैं। आलोचकों ने धूमिल द्वारा प्रयुक्त नारी के उन अंगो के प्रयोग पर प्रश्नचिह्न लगाये हैं लेकिन धूमिल का मानना है कि देहरस की चर्चा करना अर्थात् यौवन को अराजक तत्व कहना दोनों एक ही बात है। कहीं-कहीं उनकी कविता में यह अराजकता उनके मूल्यों पर कुठाराघात करती है और कहीं-कहीं स्त्री का यथार्थ और सहानुभूतिपूर्ण रवैया भी कविता में व्यक्त हुआ है -

"आदम इरादों से बित्ता भर उठी हुई पृथ्वी" शीर्षक कविता में कवि पृथ्वी को माँ के रूप में चित्रित करते हुए कहता है -

ओ अपराध सी अंधी
पाप सी उजागर
आदम इरादों से बित्ता भर
ऊपर उठी हुई पृथ्वी
तुझ पर
हर ओर से चोट हो रही है
तू वक्त के तहखाने में
लगातार हारते जुआड़ी के हाथों की
नोट हो रही है
देह से बहुत बाहर
मैं तेरा बेटा हूँ
तू मेरी माँ है

मगर, सुन –
हम दोनों के बीच का रिश्ता
कहाँ है।[71]

संग्रह की 'कविता' शीर्षक कविता के माध्यम से धूमिल जन सामान्य की व्यथा को चित्रित करना चाहते हैं। उनका मानना है कि यदि लोकतंत्र की रक्षा करना है तो इसके लिए कवि को मोर्चे पर आना होगा। मौत के डर से फरेब की कविता का समय अब नहीं है इसीलिए कहीं-कहीं धूमिल भाषा के स्तर पर भदेस भी हो जाते हैं। आज शहरी संस्कृति के साथ-साथ ग्रामीण संस्कृति भी अपनी गरिमा खोती जा रही है। नारी अपने प्राच्य संस्कृति को छोड़कर पाश्चात्य संस्कृति की तरफ बढ़ती नजर आ रही है धूमिल के साहित्य को पढ़ने के बाद उनके साहित्य में प्रयुक्त भदेस शब्दों को देखने के बाद यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि उनके काव्य में काम नहीं है बल्कि कामुकता के प्रति घृणा का भाव है। वामपंथी विचारधारा धूमिल में कूट-कूटकर भरी है। लोकतंत्र की चर्चा करते हुए कवि कहता है –

"लोकतंत्र के
इस अमानवीय संकट के समय
कविताओं के जरिए
मैं भारतीय
वामपंथ के चरित्र को
भ्रष्ट होने से बचा सकूँगा" एकमात्र इसी विचार
से मैं रचना करता हूँ अन्यथा यह इतना दुःसाध्य
और कष्टप्रद है कि कोई भी व्यक्ति
अकेला होकर मरना पसंद करेगा
बनिस्बत इसमें आकर
एक सार्वजनिक और क्रमिक
मौत पाने के।"[72]

धूमिल के अन्य काव्य संग्रहों की भाँति इस संग्रह में भी कवि की दृष्टि नारी के मांसल अंगों पर अधिक है किन्तु 'दोः पत्नी के लिए' शीर्षक कविता में कवि ने नारी को उदात्त प्रेम के प्रतीक के रूप में चित्रित किया है। नारी को दिव्य प्रेम तक पहुँचने का एक माध्यम माना है –

"देह तो आत्मा तक जाने के लिए सुरंग है
रास्ता है।
तुम्हारी अँगुलियाँ जैसे कविता की

गतिशील पंक्तियाँ हैं।
तुम्हारी आँखें कविता की गंभीर
किन्तु कोमल कल्पना हैं।
तुम्हारा चेहरा
जैसे कविता की
जमीन है
तुम एक सुन्दर और सार्थक
कविता हो मेरे लिए।[73]

धूमिल की कविताओं में जहाँ एक तरफ व्यंग्य, सपाटबयानी, सीधे प्रहार करने का जज्बा दिखायी देता है वहीं ग्रामीण चेतना और प्रकृति के प्रति एक अनुराग दृष्टिगत होता है। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा कि यदि धूमिल प्रकृतिपरक रचनाओं और ग्राम्य चेतना पर ध्यान देते तो हिन्दी साहित्य में उनका यह प्रयोग भी श्रेष्ठ होता। प्रकृति से सम्बन्धित एक रचना द्रष्टव्य है –

'पूरबिया सूरज
एक लम्बी यात्रा से लौट
पहाड़ी नदी में घोड़ों को धोने के बाद
हाँक देता है काले जंगलों में चरने के लिए
और रास्ते में देखे गये दृश्यों को
घोंखता है।[74]

'मेरा गाँव' शीर्षक कविता के माध्यम से धूमिल ने ग्रामीण अंचल को बड़ी सहजता के साथ रेखांकित करने का प्रयास किया है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है–

तारों भरा आसमान
और
मरियल खौरहा कुत्ता
सीवान मे पड़ी फसलों की लोथ का
सन्नाटा सूँघता है।
जहाँ तीन-चार पेड़ आदमी होने का
करिश्मा दिखा रहे हैं
अँधेरे में उँघते हैं घर
जैसे घुपटी मारे हुए मुसहर
उँघता है।[75]

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि 'सुदामा प्रसाद पाँड़े का प्रजातंत्र' काव्य संग्रह नवें दशक के सामाजिक, राजनीतिक विडंबनाओं का दस्तावेज है। इसमें धूमिल मुक्तिबोध, नागार्जुन और राजकमल चौधरी की अग्रिम परम्परा में नजर आते हैं। संग्रह की सशक्त कविताओं में 'सुदामा पाँड़े का प्रजातंत्र', 'न्यू गरीब हिन्दू होटल', 'संसद समीक्षा', 'घर में वापसी', 'रोटियों का शहर', 'लोकतंत्र', 'मेरा गाँव', 'जनतंत्र; एक छाया संदर्भ', 'मतदान', 'चुनाव', 'खून का हिसाब', 'रात्रि-भाषा', 'कविता', 'भूख', 'तुमने कहा था', 'हरित क्रान्ति' आदि विशेषतः उल्लेखनीय हैं। धूमिल मार्क्सवादी थे लेकिन 'वाद' के घेरे में उन्होंने अपने को कभी बाँधा नहीं। नागार्जुन की तरह उनका भी मानना है कि पहले मैं जनकवि हूँ, बाद में कुछ और। डॉ. विद्या निवास मिश्र के शब्दों में "मेरा पूरा विश्वास है कि धूमिल को उनकी सम्पूर्णता में जाँचने की जब कोशिश की जायेगी तो उनकी सभी भंगिमाएं परखी जायेंगी, केवल एक खास किस्म का तेवर ही नहीं जो अपने पक्ष में हाथ उठाता दिखता है। हकीकत यह है कि धूमिल की कविता किसी पक्ष में हाथ नहीं उठाती क्योंकि वह किसी के साथ दूर तक नहीं चल पाती, वह बहुत तेज आगे दौड़ती है। धूमिल का 'टेकू बनिहार' धूमिल के लुहार कवि को चेताता है –

हँसुए पर ताव ठीक तरे देना
कि धार मुड़े नहीं आजकल
छिनार निहाई ने
लोहे को मन माफिक हनने के लिए
हथौड़े से दोस्ती की है।[76]

सन्दर्भ

1. संसद से सड़क तक-धूमिल, पृ. 6
2. वही, पृ. 8
3. वही, पृ. 13
4. वही, पृ. 15
5. नये कवि : एक अध्ययन - संतोष तिवारी, पृ. 163
6. संसद से सड़क तक-धूमिल, पृ. 33
7. वही, पृ. 36
8. वही, पृ. 40
9. वही, पृ. 39
10. वही, पृ. 51

11. वही, पृ. 66
12. वही, पृ. 67
13. वही, पृ. 68-69
14. वही, पृ. 73
15. वही, पृ. 83
16. वही, पृ. 86
17. वही, पृ. 88
18. वही, पृ. 97
19. वही, पृ. 98
20. वही, पृ. 100-101
21. वही, पृ. 107-108
22. समकालीन कविता की पहचान - डॉ0 युद्धवीर धवन, पृ. 45
23. संसद से सड़क तक-धूमिल, पृ. 105
24. वही, पृ. 109
25. समकालीन कविता की भूमिका, सम्पादक - विशम्भर नाथ उपाध्याय, पृ. 79
26. कल सुनना मुझे - धूमिल, पृ. 1
27. वही, पृ. 1
28. वही, पृ. 9
29. वही, पृ. 17
30. वही, पृ. 11-12
31. वही, पृ. 13
32. वही, पृ. 20-21
33. वही, पृ. 22-23
34. वही पृ. 24
35. वही, पृ. 27-29
36. वही, पृ. 33
37. वही, पृ. 40
38. वही पृ. 43-44
39. वही पृ. 48
40. वही पृ. 49
41. वही, पृ. 52
42. वही, पृ. 57
43. वही पृ 61

44. वही, पृ. 63
45. वही, पृ. 66
46. वही, पृ. 69
47. वही, पृ. 68
48. वही, पृ. 70
49. वही, पृ. 71
50. वही, पृ. 71
51. वही, पृ. 76-77
52. वही, पृ. 80
53. वही, पृ. 01
54. सुदामा पाँड़े का प्रजातंत्र - धूमिल, पृ. 13-14
55. वही, पृ. 24-25
56. वही, पृ. 27
57. वही, पृ. 40-41
58. वही, पृ. 44
59. वही, पृ. 47
60. वही, पृ. 54
61. वही, पृ. 59-60
62. वही, पृ. 69
63. वही, पृ. 73
64. वही, पृ. 77
65. वही, पृ. 78
66. वही, पृ. 78
67. वही, पृ. 80
68. वही, पृ. 83
69. वही, पृ. 46-47
70. वही, पृ. 88
71. वही, पृ. 105
72. वही, पृ. 112
73. वही, पृ. 120
74. वही, पृ. 123
75. वही, पृ. 63
76. सुदामा पाँड़े का प्रजातंत्र - भूमिका - डॉ. विद्यानिवास मिश्र, पृ. 6

तृतीय अध्याय

आधुनिकता बोध और धूमिल

भारतीय समाज और साहित्य में रूढ़ियों-विडम्बनाओं के प्रति सुगबुगाहट 19वीं सदी में प्रारम्भ हो गई थी। समाज और साहित्य इसे समाप्त करने के लिए बराबर संघर्ष करता रहा। विश्व पटल पर आधुनिकताबोध का पदार्पण 17वीं शताब्दी में फ्रांस की क्रांति के साथ ही हुआ जिसे 'रेनेसां' कहा गया। इसी समय विवेक, तर्क और विज्ञान ने अपने पैर पसारने शुरु कर दिये थे। यदि रेनेसां के लक्षणों का सूक्ष्म विवेचन किया जाये तो यह साफ दिखाई देता है कि हिन्दी साहित्य में ये तत्व 14-15 वीं सदी में विद्यमान थे। भारतीय समाज में रूढ़ियों-विडम्बनाओं के प्रति विद्रोह का स्वर इसी समय उभरने लगा था लेकिन इस बदलाव को 'लोक जागरण' का नाम दे दिया गया और नवजागरण को 'विवेकवादी' जागरण का। क्योंकि उस समय तर्क को उचित स्थान नहीं मिल पाया था। समय के साथ बदलाव जरुरी भी है और तर्कसंगत भी, इतिहास इसका गवाह है। जैसे-जैसे समय बदला वैसे-वैसे साहित्य और साहित्यानुरागियों में बदलाव भी आया। यह बदलाव जहाँ एक ओर सामाजिक था वहीं दूसरी ओर औद्योगिक क्रान्ति के रूप में सामने आया। फ्रांस और इंग्लैण्ड से होता हुआ 19वीं सदी में यह भारत आया और रेनेसां, नवजागरण-आधुनिकता के नाम से व्यवस्थापित किया गया।

'आधुनिक' शब्द दरअसल काल सापेक्ष है। जो प्राचीनता या रूढ़िग्रस्तता के स्थान पर नवीनता का द्योतक है। प्राचीनता का जो मुख्य ध्येय-अंधविश्वास या धार्मिक रूढ़िग्रस्तता थी उसे आधुनिकता या नवजागरण ने खारिज करने का प्रयास किया। नये-नये विचार नई-नई धारणाएँ और नूतन सोच के साथ आधुनिक काल का पदार्पण हिन्दी साहित्य में हुआ। आधुनिक परम्परा को थोड़ा और विकसित करते हुए विद्वानों, लेखकों एवं कवियों ने आधुनिकता को जन्म दिया। यह समय सापेक्ष न होकर बौद्धिकतावादी संरचना के रूप में सामने आया। इसने परम्परा से चली आ रही रूढ़ियों को भावात्मकता, बौद्धिकता के आधार पर बदलने का प्रयास किया। फ्रांस की राज्य क्रान्ति ने तीन मुख्य बिन्दुओं को उठाया था - स्वतन्त्रता, समानता एवं विश्वबन्धुत्व। प्रश्न यह उठता है कि स्वतन्त्रता किससे? चर्च और धर्म की जड़ता से। समानता किनके बीच? कुलीन तंत्र और आम जनता के बीच। विश्वबन्धुत्व किसके साथ ? दुनिया भर के श्रम-जीवियों और उद्यमियों के साथ। इस क्रान्ति के अगुवा फ्रांस के दस्ते ने समानता पर विशेष बल दिया वे ऐसे समाज, देश, राष्ट्र की बात

कर रहे थे जिसमें भाईचारा धर्मनिर्पेक्षता एवं समाजवाद हो और हर वर्ग दूसरे वर्ग की अस्मिता पर प्रहार न करे। इसी आधुनिकता से स्वतंत्रता का विचार जुड़ा हुआ है। इसीलिए आधुनिकता के दौर में समाज के हर व्यक्ति की बिल्कुल अलग दुनिया है। पीटर एल0 बर्जर ने लिखा है – "आधुनिक जीवन में गहरा बिखराव है और यह समझना बहुत जरुरी है कि यह बिखराव जिसे हम बहुलतावाद का आसान नाम देना पसंद करते हैं, न केवल सामाजिक व्यवहार के स्तर पर दिखाई देता है, बल्कि उसकी महत्वपूर्ण अभिव्यक्ति चेतना के धरातल पर भी हुई है।"[1] जहाँ प्राचीनता में सामूहिकता है वहीं आधुनिकता वैयक्तिकता एवं चुनाव को प्रमुखता देता है। आधुनिकता इस बात का खण्डन करती है कि मानव नियति के हाथ की कठपुतली है, परम्पराओं को मानने को बाध्य है। हाँ मनुष्य संस्कृतियों, परम्पराओं को अपनी बौद्धिकता से स्वीकार कर सकता है। संस्कृतियों का निर्वहन कुछ संशोधनों के उपरान्त कर सकता है। यही पुनर्जागरण कालीन मानवतावाद है। दरअसल यूरोप के पुनर्जागरण कालीन विश्वबोध में दो बातें मुख्य थीं – एक तो, परिष्कृत सौन्दर्यबोध और दूसरी इहलोकवादी दृष्टि। दोनों ने मिलकर वैज्ञानिक क्रान्तियों को जन्म दिया था, प्रकृति के रहस्यों की खोज करने वाले मनुष्य की सीमाहीन क्षमताओं को उद्घाटित किया था। उसने मनुष्य की ऐसी तर्कसंगत, विवेकपूर्ण एवं वैज्ञानिक प्रक्रिया गढ़ी जो आगे चलकर असहनशीलता, रूढ़ियों, अंधविश्वासों तथा अंधी संक्रामक आस्थाओं से मुक्त न्यायपरक, सरसतापूर्वक समाज की संकल्पना को व्यवहार में उतारने का रास्ता साफ करने में सहायक हुई। अमेरिकी क्रान्ति का घोषणा पत्र, अधिकार सम्बंधी विधेयक, फ्रांसीसी क्रान्तिकारी नागरिक जन एवं मानवाधिकार का घोषणा पत्र, कम्युनिस्ट घोषणा पत्र, समय-समय पर एक से दूसरे देश में निकलने वाले दस्तावेज आधुनिक राजनीतिक विमर्श के अंग बन गए।"[2]

आधुनिकता की जो संकल्पना की जाती है उसमें मानव एवं उसके इतिहास का महत्वपूर्ण योगदान रहा क्योंकि ट्रेडिशन एण्ड इण्डविजुवल टैलेंट के माध्यम को आधुनिक समाज ने अपनाया और पूरी शिद्दत के साथ राजनीतिक जनतंत्र से इसको जोड़ा। अनेक विरोधाभासी मतावलंबियों को जानने और जोड़ने का प्रयास किया लेकिन आधुनिक समाज इतनी तीव्र गति से आगे बढ़ने लगा कि असहमति, खंडन-मंडन एवं वाद-विवाद नये रूप में जन्म लेने लगी। आधुनिक बौद्धिकता और संस्कृति को जड़ मानकर व्यक्ति उसे खारिज करने लगा और यह काम कुलीन तंत्र अर्थात् उदीयमान पूँजीवादी व्यवस्था के आने पर शुरू हुआ। स्थितियाँ दिन पर दिन बदलने लगी आधुनिकता कुछ तेजी से बढ़ने लगी जिस पर चिंतन करते हुए एजाज अहमद ने लिखा "इनकलाबी आदर्श एक बार कबूल कर ले तो खुद इनकलाबियों में से बहुतों

के लिए आदर्श ही भारी पड़ जाते हैं क्योंकि उनके आधार पर जो राजनीति या जो सरकार बनती है, उसको भी जनता इन आदर्शों की रोशनी में ही परखती है, जिन पर पूरा उतरने के लिए लोहे के चने चबाने पड़ते हैं।"[3]

21वीं सदी की सबसे बड़ी चुनौती के रूप में सूचना प्रौद्योगिकी उभर कर आयी है। समस्या यह है कि नवजागरण काल की कार्य सूची को ऐसे में किस तरह पूरा किया जा सकता है जिसकी जरूरत पूरे विश्व को है। इस समस्या पर चर्चा करते हुए डॉ. रवि श्रीवास्तव कहते हैं "इसे विडम्बना ही कहा जायेगा कि समाज को जिन शक्तियों ने महज दो-ढाई सौ वर्ष पहले फ्रांसीसी राज्य क्रान्ति के स्वतंत्रता, समानता एवं भाई-चारा जैसे सार्वभौमिक मानव-मूल्यों एवं आदर्शों को जन्म देकर उन्हे मानव नियति का उद्धारक घोषित किया था, वे ही आज उसकी विदाई का पुरजोर जश्न मनाने पर उतारु हैं। उनकी नजर में सामाजिक क्रान्तियाँ, वर्ग संघर्ष, समाजवाद, मार्क्स हीगल एवं नवजागरणकालीन स्वप्नदर्शी आशावादिता के सभी महावृत्तान्त असफल होकर निष्प्रभावी हो चुके हैं। मानव जाति का एकमात्र भविष्य आज का बहुराष्ट्रीय नियमों वाला उदार पूँजीवाद है। यही इतिहास का अंत है। उसके आगे राह नहीं हैं।[4]

नवजागरण (रेनेसाँ) के विषय में एंगेल्स ने लिखा था – "अभी तक मानव जाति ने जितनी क्रान्तियाँ देखीं, उसमें यह सबसे महान प्रगतिशील क्रान्ति थी। यह एक ऐसा दौर था जिसे महान प्रतिभाओं की जरूरत थी और जिसने महान प्रतिभाएँ पैदा की। चिन्तन संवेगों और चरित्र की दृष्टि से महान प्रतिभाएँ, बहुपक्षीयता और ज्ञानार्जन की दृष्टि से महान प्रतिभाएँ जिन महान प्रतिभाओं ने पूँजीपति वर्ग के आधुनिक प्रभुत्व के लिए आधार तैयार किया वे आज के पूँजीपतियों की तरह संकीर्ण न थे। उस समय के नायक श्रम विभाजन की इस दासता के शिकार न थे जिस श्रम विभाजन की संकीर्ण एकांगिकता हम प्रायः उनके अनुगामियों में पाते हैं। जो चीज खास तौर से उन्हें विशेष बनाती है वह यह है कि वे सभी अपने समय के आन्दोलनों के बीच जीते और काम करते हैं और व्यवहारिक संघर्ष में शरीक होते हैं, पक्ष चुनते हैं और लड़ते हैं। उनमें से कुछ यह काम अपनी कलम से करता है और कुछ तलवार से या दोनों से करते हैं। इसीलिए उनमें वह सार्वभौमिक शक्ति आयी जो उन्हें पूर्ण बनाती है। किताबी कीड़े अपवाद स्वरूप मिलते हैं, ये या तो दूसरे या तीसरे दर्जे के लोग हैं जो अपने उपर आँच नही आने देना चाहते।"[5]

उत्तर आधुनिकता

हिन्दी साहित्य के इतिहास में सन् 60 के बाद तेजी से आये बदलाव, औद्योगीकरण, संचारक्रान्ति, भौतिक और मानवीय मूल्यों का पतन उत्तर

आधुनिकतावाद की तरफ इशारा करने लगते हैं लेकिन समय रहते आधुनिकता के बढ़ते कदम को न रोक पाना ही उत्तर आधुनिकता को जन्म देता है। यद्यपि आधुनिकता एवं उत्तर आधुनिकता ने जितनी मूलभूत चीजों को दिया उतना इससे पहले कभी नहीं मिल पाया था। इसी उत्तर आधुनिकतावाद ने विद्युतीकरण, संचार माध्यमों, पृथ्वी से लेकर आकाश तक के सारे संसाधनों को एक माला में पिरोकर विश्व-मानव को सौंपा। आज धरती पर ही नहीं आकाश में भी मानव उन सभी चीजों को हासिल कर चुका है जिसे प्राचीन मानव स्वप्न में भी सोच नहीं पाया था। आज के युग में मानव इतना शक्तिशाली और अभूतपूर्ण गुणवत्ता से युक्त हो चुका है कि उसके लिए कोई भी कार्य असम्भव नहीं है। आज उत्तर आधुनिकता ने जिस मूल्य प्रणाली का निर्माण किया है उसके वर्चस्व (हेजीमनी) को तोड़ने के सारे नियमों का निर्माण करना ही आवश्यक है। यह तभी संभव है जब बौद्धिकता और शिक्षा का धरातल समानता से काम करता रहेगा। रेमंड विलियम्स ने 'लम्बी क्रान्ति' – द लाँग रेवल्यूशन में कहा है – "एक ऐसा वास्तविक संघर्ष जो जनतंत्र की रक्षा एवं श्रमजीवियों की विजय के लिए किये जाने वाले वर्ग संघर्ष का ही अपरिहार्य हिस्सा होगा। अपने संरचनात्मक रूपों में प्रभावकारी विचार नए अनुभवों से हीं बदले जा सकते हैं और मस्तिष्क की सक्रियता अथवा उसे जड़ एवं निस्पंद बनाने वाली परिस्थितियों के बीच हम जो अनुभव करते हैं, हमारे विचार उसी के प्रतिनिधि होते हैं। इस दृष्टि से उत्तर आधुनिकता का अध्ययन कुछ सामान्य प्रवृत्तियों पर आधारित नहीं हो सकता जिसे हम स्वीकार या नकार कर तुरंत आगे बढ़ जायें। इसके विपरीत उचित तो यह देखना होगा कि उत्तर आधुनिकता की संकल्पना क्यों विकसित हुई और किस विचार प्रणाली के विरूद्ध एक वैकल्पिक विचार-व्यवस्था की समानांतरता में उसे चालू रखा गया। उत्तर आधुनिकता की आलोचना अथवा प्रशंसा एक फैशन या बौद्धिक शगल भर बनकर न रह जाये इसलिए यह बहुत जरूरी है कि उसकी ऐतिहासिक अंतर्वस्तु की वस्तु-परकता 'आब्जेक्टिविटी' को सुरक्षित रखते हुए आज की भूमिका की पड़ताल की जाये। क्योंकि "निकट अतीत पर लिखना अधिक कठिन था (है) क्योंकि वस्तुनिष्ठता और पक्षधरता के द्वंद्व का निर्वाह बहुत कठिन होता है- इतिहासकार के लिए भी और साहित्यकार के लिए भी"[6]।

उत्तर आधुनिकतावाद को मात्र एक 'वाद' या 'विचारधारा' के संकीर्ण दायरे में नहीं बांधा जा सकता, ना ही यह आधुनिकता का विकसित रूप मात्र है। उत्तर आधुनिकतावाद एक संगठन है, एक संस्था है जिसकी अपनी अलग राजनीतिक और आर्थिक नीति है। यही दोनों उत्तर आधुनिकतावाद की दो भुजाएँ हैं। आज विश्व में

सबसे मजबूत स्थिति पूँजीवाद की है जिसके फलस्वरूप विज्ञान और तकनीकी को विशेष मजबूती मिल रही है। आज विश्व में उपभोक्तावादी संस्कृति का वर्चस्व है समाज, मीडिया, सोसायटी या मीडिया बूम, ताप नाभिकीय विद्युत सभी को पूँजीवादी संस्कृति ने अपने में समेट लिया है। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी की उत्तर आधुनिकतावाद सच्चे अर्थों में प्रौद्योगिक समाज के रूप में प्रतिष्ठित है। डॉ0 रवि श्रीवास्तव कहते हैं कि उत्तर आधुनिकतावाद एवं उत्तर औद्योगिक समाज-सम्बन्धी मेंडल के विचार लेनिन के पूँजीवाद की क्लासिकल श्रेणीबद्धता वाले सिद्धान्त साम्राज्यवाद पूँजीवाद की उच्चतम की संगति में न होने के बावजूद बृहताकार बहुराष्ट्रीय पूँजीवाद के विशुद्ध चरित्र को पहचानने में हमारी मदद करते हैं जो उन क्षेत्रों में भी तेजी से घुसा है जो अब तक प्रायः अछूते रहे हैं अथवा जिनका अब तक पूरी तरह से पूँजीवादीकरण और विकृतिकरण होना शेष था, मसलन मानवीय रिश्तों एवं संस्कृति का क्षेत्र।[7]

आधुनिकता और उत्तर आधुनिकता का शब्दकोश अत्यन्त विस्तृत है जितना देखा जायेगा सूक्ष्म ही लगेगा। प्रश्न यह है कि इन विचार धाराओं का प्रवाह साहित्य, साहित्यकार और पाठक पर क्या पड़ा? क्या वास्तव में इनके प्रभाव पाठक वर्ग पर है या सामाजिक लाभ इनके द्वारा पाठक को मिला या महज 'अपनी ढपली अपना राग' की स्थिति है? ये विचारधारायें कहीं ऐसा तो नहीं कुछ विशेष वर्ग या लोगों की साजिश का शिकार हैं? पड़ताल आवश्यक है और चुनौती भी। इतने बड़े साहित्य और विचारधारा का मूल्यांकन कठिन है पर सूक्ष्म संक्षिप्त प्रयास करना अनावश्यक भी नहीं होगा।

कविता समसामयिक परिवेश का दस्तावेज है फिर वह चाहे आदिकाल हो या आधुनिक काल। हिन्दी साहित्य के आधुनिक युग में वादों का दौर तेजी से चला। कभी नामों के आधार पर, कभी आत्मनिष्ठता के आधार पर, कभी सामाजिकता एवं अपने को प्रतिष्ठित करने के नाम पर। स्वतंत्रता से पूर्व कवियों का ध्यान भारत देश की स्वतंत्रता पर ही टिका रहा, भले ही वह आत्मनिष्ठता की भावभूमि क्यों न लिए हो। लेकिन स्वतंत्रता के बाद स्थितियों में तेजी से बदलाव आया और कविता सीधे आम आदमी से जुड़ गयी। स्वतंत्रता के बाद के पच्चीस वर्षों के कविता इतिहास पर दृष्टिक्षेप करें तो एक बात स्पष्ट हो जांती है कि उस काल को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है - मोहग्रस्तता का काल, मोहभंग का काल। भारत की आजादी से पूर्व एवं आजादी के बाद स्वतंत्रता का जो स्वप्न भारतीय जनमानस को दिखाया गया था वह सन् 1960 तक चलता रहा। सन् साठ के बाद नेताओं की अवसरवादिता, स्वार्थलिप्सा और धनार्जन की होड़ से जनता का मोहभंग हुआ। उनकी दृष्टि में नेताओं के दिये

भाषण आश्वासन झूठे हैं। धूमिल ने इस तथ्य को अपनी लम्बी कविता – 'पटकथा' में गहराई से रेखांकित किया है। उनके अनुसार देश का जनतंत्र एक छलावा है-

उसको समझा दिया गया है कि यहाँ
ऐसा जनतंत्र है जिसमें
जिन्दा रहने के लिए
घोड़े और घास को
एक जैसी छूट है
कैसी विडम्बना है
कैसा झूठ है –
दरअस्ल, अपने यहाँ जनतंत्र
एक ऐसा तमाशा है
जिसकी जान
मदारी की भाषा है[8]।

भारतीय संविधान विश्व का सर्वाधिक विशाल संविधान है और उसमें जनता की खुशहाली उनके मौलिक अधिकार, नीति निर्देशक तत्वों के माध्यम से जिस सर्वांगीण विकास का सपना सरकार ने दिखाया, वह जल्द ही दिवास्वप्न के रूप में बदल गया। सरकार लगभग हर मोर्चे पर विफल हुई और उसका खुलासा भारत चीन युद्ध के समय हुआ। चीनी आक्रमण ने भारतीयों की मोहग्रस्तता के केंचुल को उतार दिया। धीरे-धीरे भारतीय जनता सरकार के खोखले आश्वासनों से कुण्ठित होने लगी। राजनीतिक वीभत्सता का खेल धीरे-धीरे जनता के सामने आने लगा। इसके अलावा नेहरू एवं शास्त्री की मृत्यु ने भी देश की राजनैतिक स्थिति को काफी प्रभावित किया।

नेहरू युग के अंत तक रचनाकारों का भी धीरे-धीरे मोहभंग होने लगा। नेताओं की प्रशस्तियाँ उन्हें कचोटने लगी। वे तत्कालीन समाज को तटस्थ मुद्रा में देखने लगे। नया युग अर्थात् सप्तम दशक में स्वयं मध्य वर्ग की हालत काफी खराब हो चुकी थी। प्रबुद्ध मध्यवर्ग प्रकृति वाले अकल्याणकारी साबित होने लगे। व्यवस्थाएं धीरे-धीरे कुचक्रों में फंसती नजर आने लगी। हर वर्ग ने 'अपनी डफली अपना राग' को अलापना प्रारम्भ कर दिया। मानव राहविहीन और व्यवस्था अर्थहीन होने लगी थी। समृद्ध के समृद्धतर एवं दरिद्र के दरिद्रतर होने की प्रक्रिया निरन्तर जारी रही। समाज में जनसमान्य की जीवनोपयोगी अवश्यकताओं की पूर्ति नहीं हो पा रही थी। पग-पग पर उन्हें अपमानित होना पड़ रहा था जिससे उनमें वर्ग चेतना, असमानता, साधनहीनता और सामाजिक न्यायहीनता का एहसास होने लगा। इन्हीं वेदनाओं के

कारण मानव अपने अस्तित्व को लेकर सशंकित रहने लगा और जनमानस की यह कुण्ठा कवियों के कथ्य का प्रमुख कारण बनी।

समकालीन कविता के पूर्व भी कविता पर अपने समय का प्रभाव देखा जा सकता है लेकिन समकालीन कविता में अपने शाश्वत मूल्यों के साथ सीधी मुलाकात होती नजर आती है। छायावादी कविता में आत्मनिष्ठता, प्रगतिवादियों की कविता में यथार्थ की सघनता, प्रयोगवादियों की कविता में अनुभूतियों की संश्लिष्टता और नई कविता में बिम्बधर्मिता कवियों का साध्य रही। इन सबसे अलग समकालीन कविता-साठोत्तरी कविता में समाज की वीभत्सता, विसंगति एवं नग्नतापूर्ण सच्चाई कवियों के सामने आयी जिसे उन्होंने नये भाषिक तेवर के साथ प्रस्तुत कर दिया। धूमिल के शब्दों में -

छायावाद के कवि शब्दों को तोल कर रखते थे,
प्रयोगवाद के कवि शब्दों को टटोल कर रखते थे,
नई कविता के कवि शब्दों को गोल कर रखते थे,
सन् साठ के बाद के कवि शब्दों को खोल कर रखते हैं।[9]

समकालीन कविता में 'जो हो रहा है' (बिकमिंग) का सीधा खुलासा है। इसे पढ़कर वर्तमान काल का बोध हो सकता है क्योंकि उसमें जीते, संघर्ष करते, बौखलाते, तड़पते, गरजते तथा ठोकर खाकर सोचते वास्तविक आदमी का परिदृश्य है।

आज की कविता में काल, अपने गत्यात्मक रूप में है, ठहरे हुए 'क्षण' या क्षणांश, के रूप में नहीं। यह 'कालक्षण' की कविता नहीं, कालप्रवाह की, आघात और विस्फोट की कविता है। इसी से समकालीन लंबी कविताओं की बुनावट तरंगों की तरह दिखती है। उनमें अनुपात, अवयव-सन्तुलन सामरस्य नहीं है, 'क्लासिक' पूर्णता नहीं है परिष्कृति नहीं हैं, उनमें मुक्तिबोधक चट्टानें, अंधड़, लू-लपट, हिंस्रगर्जन, उपहास, व्यंग्य, लताड़ और मार-धाड़ है। उसमें काल का होता हुआ रूप है, जीवन और मूल्यों की अमूर्त धारणाओं के स्थान पर, सताए हुए लोगों का विरेचन और विद्रोह है, द्रोह है।[10]

सन् 1960 के बाद साहित्य में एक नवीन बदलाव देखने को मिलता है। पूर्व की कविताओं में जहाँ साहित्य उपदेश के साथ रस, आनन्द को साथ लेकर चलता था वही समकालीन कवियों ने अपने यथार्थ की प्रतिक्रिया में तीखा व्यंग्य, विद्रोह और अति नग्नता को मूल अस्त्र के रूप में प्रयोग करना शुरू किया। अनेक आलोचकों-समीक्षकों ने उन्हें आत्मसंयम की सलाह दी लेकिन समकालीन कविता या

उसका परिवेश उन कवियों को, संयम को छोड़ना ही उचित बताया। समाज की विद्रूपताओं और उनकी घुटन समकालीन कवियों को विवश करती रही। केदारनाथ सिंह अपने एक लेख में समकालीन कविता पर लिखते है - साठोत्तरी कविता का विकास दो दिशाओं में हुआ या हो रहा था, एक शुद्ध कविता से प्रतिबद्ध कविता की ओर, दूसरे कविता से अकविता की ओर। यह युवा पीढ़ी में घटित तीखे परिवर्तन और गहरे असन्तोष का दौर था। व्यवस्था के प्रति विद्रोह का लोकप्रिय मुहावरा कवियों से अधिक आत्मसंयम की मांग कर रहा था। उग्रता और धैर्य के संतुलन के ही आधार पर कविता ने बदलते हुए यथार्थ के तीखे काव्यात्मक उत्तेजना में भी इस संतुलन को न खोकर अपनी काव्य ऊर्जा प्रमाणित की। 'संसद से सड़क तक' साठ के बाद के काव्य परिदृश्य का अवश्य ही एक महत्वपूर्ण तथा उल्लेख्य संग्रह है जिसे अपने आप में प्रस्थान माना जा सकता है। यदि इस दौर की कविता को 'युवा कविता' जैसी संज्ञा मिली होती तो वह ज्यादा सार्थक होती। सन् साठ के बाद नई काव्य धाराओं का दौर चला जिसमें लघु एवं अनियत कालीन पत्रिकाओं के माध्यम से अनेक नये काव्य आन्दोलन बरसाती मेढकों की भाँति उपस्थित हुए। डॉ0 जगदीश गुप्त ने इन्हें किसिम-किसिम की कविता कहकर अभिहित किया है। इन काव्यान्दोलनों में परम्परा की अस्वीकृति और शिल्प की नूतनता का विशेष आग्रह रहा। इस काल के जितने भी काव्यान्दोलन थे उनकी मूल विचारधारा एक दूसरे से बहुत कुछ मिलती जुलती थी। कथ्य और शैली को लेकर इन आन्दोलनों के बीच विभाजक रेखा खींचनी अत्यन्त कठिन थी। इस दौर के प्रमुख काव्यान्दोलन[11] - अकविता, अस्वीकृत कविता, अन्यथावादी कविता, अभिनय कविता, अधुनातन कविता, साम्प्रतिक कविता, सनातन सर्वोदयी कविता, सीमान्तक कविता, विद्रोही कविता, ठोस या कंकरीट कविता, ताजी कविता, नवप्रगतिवादी कविता, श्मशानी कविता, अगीत कविता, विचार कविता, आदि काव्य आन्दोलनों ने सातवे दशक में लघु पत्रिकाओं के माध्यम से साहित्यिक उछल-कूद मचायी। ये आन्दोलन काव्य क्षितिज पर जितने तेजी से उभरे उतने ही शीघ्र तिरोहित भी हो गये। आश्चर्य की बात यह है कि एक साथ हिन्दी साहित्य के इतिहास में इतने काव्य आन्दोलन पहली बार देखने को मिलते हैं। अनेक पत्रिकाएं तो किसी काव्य आन्दोलन को लेकर एक ही अंक के बाद सिमट गईं। लेकिन जो भी हुआ एक बात तो तय है कि इन आन्दोलनों ने नये काव्य क्षितिज के तलाश की प्रेरणा दी जिसके फलस्वरूप तत्कालीन युवा कवि जनमानस की समस्याओं को आत्मसात् कर कविता का ताना-बाना बुनने लगे।

एक ज्वलंत प्रश्न यहाँ यह खड़ा होता है कि एक दशक में इतनी अधिक संख्या में इतनी विचारधाराओं - लघु पत्रिकाओं के प्रकाशन के पीछे मूलभूत कारण क्या थे?

इसका यदि सामान्य सा अर्थ निकाला जाये तो कहा जा सकता है कि युवा-पीढ़ी में राजनीतिक, आर्थिक और साहित्यिक जागृति आई। क्योंकि नेहरू युग की नीतियों से हताश-निराश जन समूह, समाजवाद, लोहियावाद आदि की विचार धाराओं से प्रभावित होने लगा था। जनमानस खासतौर पर युवाओं में पूँजीवाद, व्यक्तिवाद, क्षणवाद, गाँधीवाद, अतियथार्थवाद आदि से चिढ़ होने लगी थी। उनका रूझान व्यवस्था के प्रति विद्रोह, सघर्ष और बगावत की तरफ बढ़ने लगा था। उस समय देश में जातिवाद, सम्प्रदायवाद और प्रदेशवाद रूपी जहर राजनीति में पूरी तरह घुल चुका था। इस छल-छद्म की राजनीति का उदाहरण केदारनाथ सिंह ने "उत्तर कबीर और अन्य कविताएँ" एवं 'बाघ' जैसे काव्य संग्रहों के माध्यम से रेखांकित करने का सफल प्रयास किया है। उत्तर आधुनिकतावादी स्थितियों ने समाज से जातीय वैषम्य को मिटाने का हर सम्भव प्रयत्न किया। समकालीन कवियों के पास आशावाद और निराशावाद के प्रश्न से अधिक महत्वपूर्ण प्रश्न खड़ा हो गया। जीवन को भीतर-बाहर से समझने का। रघुवीर सहाय का काव्य संग्रह 'आत्महत्या के विरूद्ध' आमानवीय राजनीति को तटस्थता के साथ रेखाकिंत करता नजर आता है। इसके अलावा धूमिल का 'संसद से सड़क तक', मलयज का 'जख्म पर धूल' लीलाधर जगूड़ी का 'नाटक जारी है', 'जलसाघर' हरि नारायण व्यास का 'आउटर पर रूकी ट्रेन', केदार नाथ सिंह का 'अकाल में सारस' विजयनारायण देव साही का 'साखी' आदि काव्य संकलनों में इन कवियों ने अपनी कविताओं के माध्यम से समाज का नया चेहरा प्रस्तुत किया जो परम्परागत संस्कारों पर प्रहार करता नजर आता है।

समकालीन कविता में मनुष्य की प्रतिमा स्थिर, जड़, निष्क्रिय और दार्शनिक नहीं है, उसमें उस आदमी की शक्ल चित्रित है जिसकी सरलता से पहचान हो सकती है। इसके विपरीत नई कविता के 'अंधायुग' कवि मानव के मूल आकार को प्रस्तुत करने में सफल नहीं रहे। वे क्षणवादी या क्षणांश मानव को ही चित्रित करते रहे। 'आत्मजयी,' 'असाध्यवीणा' संशय की एक रात' आदि में जो चित्रित व्यक्ति है, वह काल की दृष्टि को ऐतिहासिक दृष्टि से नहीं देखता, सिर्फ दार्शनिक दृष्टि से देखने का प्रयास करता।

समकालीन कविता से पूर्व देश की जो स्थिति थी वह चिन्तनीय रही। हर तरफ उच्च वर्ग हावी था। आधुनिकता के नाम पर नैतिकता को एक सिरे से नकारा जा रहा था, सामाजिकता का विखंडन हो रहा था। यह उच्च वर्ग क्रूर और सर्व हड़पू की नीतियों पर चल रहा था। न उसे देश न समाज की और ना ही सामान्य आदमी की परवाह थी। हर तरफ लूट, षडयन्त्र, धन और अधिकार का बोलबाला था। भोग और विलास ही इनका चरित्र बन गया था। प्रथम राष्ट्रपति डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद ने इस खतरे

की ओर संकेत करते हुए कहा था – "जो हमारे सामने है, वह स्वाधीनता संघर्ष से भी कठिन है। उस समय हमारे सामने विभिन्न भागों में सामंजस्य स्थापित करने की समस्या नहीं थी, बाँटने के लिए पद-स्थान के प्रलोभन नहीं थे, साझे के लिए हमारे हाथों मे कोई शक्ति और सत्ता नहीं थी। अब हमारे पास सब कुछ है और सचमुच प्रलोभन बड़े हैं।[12]

प्रसिद्ध अर्थशास्त्री गुन्नार मिर्डल ने 'एशियायी ड्रामा' पुस्तक में आजादी के बाद हुए आधुनिकीकरण की न्यूनताओं और विसंगतियों का विश्लेषण किया है। उनका मानना है कि भारत में दो वस्तुओं का आधारभूत महत्व है – भूमि और श्रम। आजादी के बाद इसमें कोई बदलाव नहीं हुआ बल्कि भूमिहीन श्रमिकों की संख्या बढ़ती गई। आगे वे कहते हैं 'कि सरकार द्वारा प्रजातंत्र और कम्यूनिज्म के बारे में हवाई विचार रखने के कारण जनता पर न कोई सामाजिक आश्वासन लागू हो सका और न उसमें कर्तव्य-भावना भरी जा सकी है। इस कारण से अकुशलता, भ्रष्टाचार, असमानता और कट्टरता बढ़ी है जो आर्थिक और सामाजिक सम्बन्धों में फैल गई है। इस प्रक्रिया को उन्होंने 'अवरूद्ध सामाजिक क्रांति' कहा है। वह एशिया के समाजों में आधुनिकीरण की पूर्व शर्त 'अधिकाधिक समानता' को मानते हैं। हमारे देश में अधिकारों का विकास हुआ है, जिसकी साखी-मॉनोपॉली कमीशन, तथा 'प्रेस कमीशन' है। आर्थिक और समाजिक क्रांति को विलम्बित कर दिया गया है और राजनीतिक क्रांति में यर्थाथता क्षीण हुई है। बड़े शानदार संसदीय दिखावे के पीछे भारत अभी भी जनता द्वारा नियंत्रित नहीं हो रहा है। और न ही उसकी नीतियाँ इस प्रकार तय की जा सकती हैं कि वे जनता के हित में हों। अतः उत्तरदायित्व धुंधले पड़ गये हैं[13]।

उत्तरदायित्वों के धुँधला जाने से दिशा और लक्ष्य अर्थात् भविष्य अंधा हो गया है। अतः राजनैतिक दर्शन और सांस्कृतिक सृजन के बजाय गुटबाजी और संकीर्णतावाद बढ़ा है। अगर भारत के विकास और प्रयत्नों के कल-कलनिनादी झरने सूख गये या सूख रहे हैं तो इसकी अधिकांशतः जिम्मेदारी देश के सामाजिक एवं आर्थिक रचना गठन के सुधार की योग्यता एवं अनिच्छा पर ही है। अतः वे (मिर्डल) कहते हैं कि यह धारणा एक जाहिल विचार है कि कम्यूनिज्म खतरा है। अतः हमारा सांस्कृतीकरण अभी तक यूरोपियन ज्यादा है[14]।

गुन्नार मिर्डल के विचारों को यदि दृष्टिगत किया जाये तो इसका प्रभाव काफी हद तक भारतीय जन जीवन पर पड़ा। व्यापक स्तर पर प्रदर्शन, भ्रष्टाचार, अमानवीकरण, पाश्वीकरण (ब्रूटलाइजेशन) तथा तज्जन्य आत्मनिर्वासन (एलियनेशन) से देश त्रस्त हो गया है। वर्गगत वैषम्य के फलस्वरूप देश में बढ़ रहे अनाचार से,

छल-बल परक जीवन विधि से लोगों में संत्रास, घुटन, कुण्ठा स्पष्ट देखने को मिलने लगी है। ऐसे में अस्वीकृति और असम्मान तेजी से बढ़ रहा है।

परम्परागत भारतीयता, सम्बन्धों का सामन्ती ढाँचा, लोकनिरपेक्षता, आध्यात्मिकता, धर्मिकता, पारिवारिक स्थिरता, रूढ़िबद्धता, पवित्र धर्मग्रंथों का अंधानुगमन, नारी, शूद्र या सर्वहारा के प्रति प्राचीन धर्मों का अपमानजनक व्यवहार, ऊँचनीच, भेदभाव, छुआछूत, वर्ण जातिवाद, अतीत-रीति रिवाज परस्ती, सीढ़ीदार सामाजिक संरचना और अमूर्त एवं मिथ्या गर्व प्रधानता आदि की धरोहर को नकारा जाने लगा और विवेकशीलता, प्रगति, क्रान्ति और परिवर्तन की व्याकुलता और उग्रता में भारतवर्ष के सामन्ती अवशेषों को तिलांजलि दी जाने लगी[15]।

राजनीति और समाज के इस भीषण अभिशाप को धूमिल, राजकमल चौधरी, श्रीकान्त वर्मा, लीलाधर जगूड़ी, रघुवीर सहाय, सव्यसाची जैसे कविगण झेल रहे थे और सबका दम घुट रहा था। इसलिए इन सड़ी-गली राजनीतिक परम्परा को उखाड़ फेंकने की आवश्यकता महसूस की जा रही थी। "साठोत्तरी पीढ़ी के लिए राजनीति एक जीवन्त सच्चाई रही है, लेकिन इस राजनीति ने उसे राहत देने की अपेक्षा आहत अधिक किया है[16]।

धूमिल साठोत्तरी कविता के एक ऐसे सशक्त कवि के रूप में उभरते हैं जिनका काव्य आधुनिकता बोध से ओतप्रोत है। आधुनिकता बोध के विषय में कोई निश्चित आवधारणा नहीं बनाई जा सकती क्योंकि देशकाल के अनुसार आधुनिकता बोध का स्वरूप भी परिवर्तित होता रहता है। आधुनिकता बोध वस्तुतः कोई वाद नहीं है जिसे धूमिल ने आत्मसात् किया हो बल्कि वह वर्तमान से जुड़ी एक संचेतना है जो धूमिल के कवि कर्म को निरन्तर गतिशील रखती है। आधुनिकता का सम्बन्ध मानव-प्रगति से है। आज मानव एक ऐसे मोड़ पर पहुँच चुका है जहाँ बुद्धि और विवेक की महत्ता है उसकी दृष्टि में परम्पराओं और रूढ़ियों का कोई महत्व है। देश के प्रजातांत्रिक मूल्यों पर प्रहार करते हुए वे कहते हैं –

न कोई प्रजा है
न कोई तन्त्र है
यह आदमी के खिलाफ
आदमी का षड़यन्त्र है।[17]

आचार्य नन्ददुलारे बाजपेई ने मानव को नई कविता की रचनात्मक उपलब्धि के रूप में स्वीकार किया है जो आधुनिकता बोध से गृहीत है।[18] धूमिल की विचारधारा मानवतावादी है। मानवता के हित के लिए वे कहीं-कहीं आक्रोशी मुद्रा में

आ जाते हैं और कहीं-कहीं भावुक हो उठते हैं। राजनीति की आड़ में मानव का शोषण करने वाली व्यवस्था के प्रति उनका विद्रोह अनेक कविताओं में उभरा है। कवि देश के नेताओं के द्वारा बार-बार दी जा रही समाजवाद की दुहाई को बेइमानी मानता है -

भूख और भूख की आड़ में
चबायी गयी चीजों का अक्स
उनके दाँतों पर ढूँढ़ना
बेकार है। समाजवाद
उनकी जुबान पर अपनी सुरक्षा का
एक मुहावरा है।
मगर मैं जानता हूँ कि मेरे देश का समाजवाद
मालगोदाम में लटकती हुई
उन बाल्टियों की तरह है जिस पर 'आग' लिखा है
और उनमें बालू और पानी भरा है।[19]

आज की राजनीति मूल्यों के विखण्डन एवं उत्तरोत्तर पतन की राजनीति है। अपने स्वार्थ के लिए आज का नेता सब कुछ इस्तेमाल करने में माहिर है। अपने विरूद्ध जबान खोलने वाले विरोधियों को किसी भी प्रकार से समाप्त करने में उसे कोई गुरेज नहीं है। कवि कहता है -

वे गोली और गोली के इस्तेमाल
में माहिर हैं।
घिसे हुए जूतों के तल्लों-सी
उनकी आत्मा परिचित है
अन्धकार के उन सारे रास्तों से -
जहाँ नर-संहार के आदिम उत्सव होते हैं
वह वाम मार्ग है और यह
दक्षिण।[20]

देश के आजाद होने के समय आदमी भविष्य का जो सुनहरा स्वप्न देख रहा था आज उसकी नींद उड़ गयी है। सारे सुनहले स्वप्न आज छलावा बन गये हैं। कवि की चिन्ता आज की इस संकट पूर्ण स्थिति को लेकर है-

और अब तो हवा की बुझ चुकी है
और सारे इश्तहार उतार लिये गये हैं

जिनमें कल आदमी -
अकाल था। वक्त के
फालतू हिस्सों में
छोड़ी गयी फालतू कहानियाँ
देश-प्रेम की हिज्जे भूल चुकी हैं,
और वह सड़क -
समझौता बन गयी है
जिस पर खड़े होकर
कल तुमने संसद को
बाहर आने के लिए आवाज दी थी
नहीं, अब वहाँ कोई नहीं।[21]

धूमिल ने अपनी कविताओं के माध्यम से राजनीति का मखौल बार-बार उड़ाया है। उनकी दृष्टि में जनता को राजनीति का सही अर्थ समझने की आवश्यकता है।

एक उदाहरण द्रष्टव्य है-

क्या आजादी सिर्फ तीन थके हुए रंगों का नाम है
जिन्हें एक पहिया ढोता है?
या इसका कोई खास मतलब होता है।[22]

इन राजनीतिक परिस्थितियों ने समकालीन कवियों को झकझोर कर रख दिया। सरकारी कार्यालयों मे व्याप्त भ्रष्टाचार, उठापटक, अनचाहे कार्यो का बोझ, लिजलीजी व्यवस्था आदि से व्यक्ति टूटता जा रहा था। ऐसी स्थिति मे कविगण या तो पुरानी परम्परा में अपने को ढालकर किसी तरह जीवित रहने का स्वाँग रचते, या उसे पूरी तरह अस्वीकार करते। सन् साठ के बाद हिन्दी-साहित्य में ये दोनों रूप पाये जाते हैं। कुछ ने् तो संयत भाषा में कुछ हद तक परम्परा की भाषा को स्वीकार कर उसका निषेध किया और कुछ ने तो सीधे तौर पर उसे अस्वीकार किया। यह अस्वीकार या निषेध कहीं तो व्यंग्य के माध्यम से और कहीं सपाटबयानी के रूप में प्रकट हुआ है। साठोत्तरी कविता के कवियों की बेबसी एवं छटपटाहट का कारण चतुर्दिक व्याप्त विद्रूपताओं को यथार्थ की सतह पर व्यक्त न करने की विवशता रही। इसके विपरीत धूमिल सातवें दशक के काव्याकाश में धूमकेतू की तरह प्रकट हुए जिन्होंने भाषा एवं शिल्प के परम्परागत मानदण्डों की परवाह नहीं की।

धूमिल की कविताओं में अपने समय की सच्चाई, परम्परा की अस्वीकृति और

सामाजिक वैषम्य के प्रति तीव्र एवं उग्र विरोध-भाव देखने को मिलता है। 'मोचीराम' कविता मे परस्पर संवाद की भाषा को नाटकीय रूप देते हुए धूमिल ने अपने भीतर के आक्रोश को स्वर दिया है। मोची अपने ग्राहकों से जिस व्यंग्य एवं विद्रूप भाषा को झेलता है उसे उसी रूप में धूमिल ने पाठकों को वापस कर दिया है-

आजकल
कोई आदमी जूते की नाप से
बाहर नहीं है
फिर भी मुझे ख्याल रहता है
कि पेशेवर हाथों और फटे हुए जूतों के बीच
कहीं न कहीं एक अदद आदमी है
जिस पर टाँके पड़ते हैं,
जो जूते से झांकती हुई अंगुली की चोट छाती पर
हथौड़े की तरह सहता है।[23]

समसामयिक विडम्बनाओं पर अपनी आक्रोशपूर्ण अभिव्यक्ति देकर उसे यथार्थ के निकट पहुँचाया है जिसके कारण धूमिल की काव्य भाषा में अश्लीलता लक्षित होती है। उन्होंने ऐसे शब्दों का जान-बूझकर प्रयोग किया है जिनके प्रयोग से या तो समकालीन कवि कतराते रहे हैं या कन्नी काटकर निकलने का प्रयास करते रहे हैं। डॉ0 रामकली सर्राफ के शब्दों में - कदाचित् अश्लीलता के सन्दर्भ में जोड़े गये शब्दों के माध्यम से धूमिल अपने भीतर के आक्रोश, वितृष्णा और विसंगति को नयी अर्थवत्ता देना चाहते थे लेकिन सही वैज्ञानिक चिन्तन से सम्बद्ध न हो पाने के कारण वे अराजकतावाद के शिकार हुए। वस्तुस्थिति के यथार्थ की सही पहचान न कर पाने का परिणाम था कि उन्होंने थोड़े, अश्लील शब्दों से भरी कविताएँ लिखीं। इसके बावजूद धूमिल प्रतिक्रियावादी कवियों की तरह शोषक-शासक वर्ग की राजनीति के पक्षधर नहीं बने[24]।

धूमिल ने लिखा भी है-

'मुझे अपनी कविताओं के लिए
दूसरे प्रजातंत्र की तलाश है[25]।

इस काल में राजनीति में जो भटकाव, आया उससे धूमिल पर नक्सलवादी आन्दोलन एवं वामपंथी विचारधाराओं का गहरा प्रभाव पड़ा। 'संसद से सड़क तक' में जहाँ एक ओर सामाजिक यथार्थ के प्रति उनकी तीखी प्रतिक्रिया है वहीं दूसरी ओर राजनीतिक अराजकता, क्रांतिकारी दुस्साहसिकता भी देखने को मिलती है। धूमिल की

दृष्टि में आजादी का सही मूल्य जनता तक नहीं पहुँच पाया है। देश की समाजवादी व्यवस्था उन्हें खोखली लगती है -

और सहसा मैंने पाया कि मैं खुद अपने सवालों के
सामने खड़ा हुआ हूँ और
इस मुहावरे को समझ गया हूँ
जो आजादी और गांधी के नाम पर चल रहा है
जिसमें न भूख मिट रही है, न मौसम
बदल रह है।
लोग बिलबिला रहे हैं (पेड़ों को नंगा करते हुए)
पत्ते और छाल
खा रहे हैं
मर रहे हैं, दान
कर रहे हैं।
जलसों-जुलूसों में भीड़ की पूरी ईमानदारी से
हिस्सा ले रहे हैं और
अकाल को सोहर की तरह गा रहे हैं[26]।

धूमिल शहर में रहते हुए भी ग्रामीण परिवेश के कवि हैं। गाँव की मिट्टी की सोंधी गंध उनके पोर-पोर में समाई हुई है। उनके बचपन में जो गाँव हरे-भरे और खुशहाल थे आज धीरे-धीरे बंजर बनते जा रहे हैं। किसान को कड़ी मेहनत के बाद भी अपनी फसल का लाभ नहीं मिल पाता। गाँव की विपन्नता को देखकर सरकार ने जो हरित क्रान्ति का नारा उछाला था उसका सही लाभ किसानों को नहीं मिल पा रहा। दुकानों में बैठे सेठ साहूकार उनकी खून पसीने की कमाई को हड़पकर मोटे हो रहे हैं और किसान निरन्तर दुर्बल और अशक्त होता जा रहा है। 'हरित क्रान्ति' कविता के माध्यम से धूमिल ने इस व्यवस्था पर गहरी चोट की है -

इतनी हरियाली के बावजूद
अर्जुन को नहीं मालूम उसके गालों की हड्डी क्यों
उभर आई हैं। उसके बाल
सफेद क्यों हो गये हैं।
लोहे की छोटी-सी दुकान में बैठा हुआ आदमी
सोने और इतने बड़े खेत में खड़ा आदमी
मिट्टी क्यों हो गया है।[27]

आज आदमी के भीतर का आदमी मर चुका है। समाज में हत्या, शोषण, अत्याचार, अनाचार, अपहरण, बलात्कार आदि हो रहे हैं, किन्तु मनुष्य का ध्यान उस पर नहीं है। गली और चौराहों पर पड़ी हुई तड़पती हुई लाश से कन्नी काटकर लोग निकल जाते हैं। सहायता तो दूर उसके प्रति अपनी सहानुभूति भी व्यक्त करने का भी उनके पास समय नहीं है। कवि कहता है –

मुर्गे की बांग पर
सूरज को टाँग कर
सो जाओ
हत्याओं के खिलाफ
ओढ़कर
निकम्मी आदतों का लिहाफ[28]।

धूमिल सामाजिक कुरीतियों पर व्यंग्य करने से नहीं चूकते। उनकी कविता समाज के अनकहे यथार्थ की परतें मिरन्तर खोलती हैं। वह समाज की विद्रूताओं विसंगतियों और अव्यवस्थाओं की धज्जियाँ उड़ाकर रख देते हैं। प्रस्तुत कविता में प्रकृति के माध्यम से कवि ने जीवन के तीखे यथार्थ को अभिव्यक्ति दी है –

लहलहाती हुई फसलें.......
बहती हुई नदी . . .
उड़ती हुई चिड़ियाँ . . .
यह सब, सिर्फ, तुम्हें गूँगा करने की चाल है
क्या तुमने सोचा कि तुम्हारा –
यह जो बुरा हाल है
इसकी वजह क्या है?
इसकी वजह वह खेत है
जो तुम्हारी भूख का दलाल है
आह ! मैं समझता हूँ कि यह एक ऐसा सत्य है
जिसे सकारते हुए हर आदमी झिझकता है
मगर तुम सोचो कि डबरे में
डूबता हुआ सूरज
खेत की मेड़ पर आदमी को
एक लम्बी परछाई के सिवा और क्या दे
सकता है[29]।

धूमिल ने समाज की कड़वी सच्चाई को नग्न करने के लिए बिम्बों-प्रतीकों का प्रयोग किया है उनके काव्य में सामाजिक यथार्थ को उभारने के लिए स्थान-स्थान पर 'जंगल' और 'व्याकरण' शब्द का प्रयोग हुआ है जो क्रमशः अराजकता और व्यवस्था का सन्दर्भ देते हैं -

उन्होंने किसी चीज को
सही जगह नहीं रखने दिया है
न संज्ञा
न विशेषण
न सर्वनाम
एक समूचा और सही वाक्य
टूटकर
'बि ख र' गया है
उनका व्याकरण इस देश की
शिराओं में छिपे हुए कारकों का
हत्यारा है
उनकी सख्त पकड़ के नीचे
भूख से मरा हुआ आदमी
इस मौसम का
सबसे दिलचस्प विज्ञापन है और गाय
सबसे सटीक नारा है[30]।

धूमिल के साहित्य में बदलाव बराबर नजर आता है। वे कभी जनकवि बनकर लोक चेतना की बात करते हैं तो कभी 'पटकथा' जैसी कविता के माध्यम से देश की असली तस्वीर जनता के सामने ला देते हैं। उनके काव्य को समझने के लिए उनके मन के अन्तर्द्वन्द्वों को भी समझना पड़ेगा। 'पटकथा' का समापन करते हुए वे एक अन्तर्विरोध की स्थिति स्पष्ट कर देते हैं -

मेरे सामने वही चिरपरिचित अंधकार है
संशय की अनिश्चियग्रस्त ठण्डी मुद्राएं हैं
हर तरफ
शब्दभेदी सन्नाटा है।
दरिद्र की व्यथा की तरह
उचाट और कूँथता हुआ। घृणा में
डूबा हुआ सारा का सारा देश

पहले की ही तरह आज भी
मेरा कारागार है।[31]

धूमिल की 'मोचीराम' कविता यद्यपि 'पटकथा' से काफी छोटी कविता है किन्तु व्यथा, दंभ, शोषित अपमानित व्यक्ति की जो प्रस्तुति 'मोचीराम' में है वह पटकथा में नहीं है। 'मोचीराम' को पढ़ने के बाद निराला के 'भिक्षुक' और 'विधवा' जैसी रचनाओं की याद ताजा हो जाती है। निराला जहाँ मानवीय संवेदना जगाते हैं वही धूमिल अपनी चमत्कारप्रियता के कारण 'वर्ग चेतना' की ओर ध्यान आकृष्ट करते हैं।

समकालीन कविता की समीक्षा करते समय एक बात स्पष्ट रूप से देखने को मिलती है कि साहित्य में, कम से कम हिन्दी साहित्य में 'धारा परिवर्तन' हमेशा 'कथ्य' के माध्यम से ही हुआ। भाषा आन्दोलनों की मांग के पीछे भी कथ्य ही रहा है। द्विवेदीयुग, छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नई कविता और नवप्रगतिशील कविता (विरोध-विद्रोह क्रांति) के मूल में भी प्रासंगिकता कथ्य की ही रही। ''कथ्य की निर्णयात्मकता के प्रत्यय में यह पूर्व स्वीकृत तथ्य है कि वह 'कथ्य' अनुभूत या भावयुक्त हो, फ्लैट हो। 'भावित कथ्य' के बिना 'कथ्य' की सूचना या विश्लेषण, कविता की नहीं, समाचार या दर्शन की पोथी की सृष्टि करेगा। लीलाधर जागूड़ी की एक पंक्ति यह है : 'धीरे-धीरे चीरो हममें अभी पीड़ा शेष है।' अब इस पंक्ति में कथन-विधि का चमत्कार तो सिर्फ 'चीरो' के प्रयोग में है मगर यह पंक्ति अपने 'कथ्य'- भावित कथ्य से पाठक को प्रकंपित कर देती है क्योंकि वह शोषित है और उसे प्रतिक्षण 'चीरे जाने' की वेदना का प्रामाणिक अनुभव है।

सन्दर्भ

1. द होमलोस माइन्ड ब्रिगेड एंड किलरन - हैन्सफ्रिड, पृ0 62-63
2. उत्तर आधुनिकतावादः विभ्रम और यथार्थ - डॉ0 रवि श्रीवास्तव, पृ0 177
3. आज़ के जमाने में मार्क्सवाद का महत्व- एजाज अहमद प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली-1966, पृ0 18
4. उत्तर आधुनिकतावादः विभ्रम और यथार्थ - डा0 रवि श्रीवास्तव, पृ0 178
5. वही पृ0 374
6. इतिहास बोध - लाल बहादुर वर्मा - अंक 38, पृ0 64
7. उत्तर आधुनिकतावादः विभ्रम और यथार्थ - डा0 रवि श्रीवास्तव, पृ0 5
8. संसद से सड़क तक-घूमिल पृ. 105
9. कल सुनना मुझे-धूमिल पृ. 36
10. समकालीन कविता की भूमिका - सं. विश्वम्भर नाथ उपाध्याय, पृ. 3-4

11. धर्मयुग पत्रिका, 9 जुलाई 1965
12. उद्धृत-भारत का संवैधानिक विकास और स्वाधीनता संघर्ष - डॉ. सुभाष कश्यप पृ. 90
13. आधुनिकता बोध आधुनिकरण - डॉ. रमेश कुन्तल मेघ, पृ. 86
14. वही पृ. 86
15. समकालीन कविता और धूमिल - डॉ. मंजुला उपाध्याय, पृ. 27-28
16. आलोचना, जुलाई-सितम्बर 1978, पृ. 53
17. सुदामा पाण्डे का प्रजातन्त्र, पृ. 21
18. नई कविता, नन्द दुलारे बाजपेई, पृ0 41
19. संसद से सड़क तक, पृ0 126-127
20. सुदामा पाण्डे का प्रजातन्त्र, पृ0 93
21. संसद से सड़क तक, पृ0·21
22. वहीं, पृ. 10
23. वहीं, पृ. 37—38
24. समकालीन कविता की प्रवृतियाँ - डॉ. रामकली सर्राफ, पृ. 189
25. संसद से सड़क तक, पृ. 66
26. संसद से सड़क तक - धूमिल, पृ0 16
27. सुदामा पाण्डे का प्रजातंत्र, पृ0 88
28. संसद से सड़क तक, पृ0 78
29. वहीं, पृ0 47-48
30. वहीं, पृ0 109-110
31. कल सुनना मुझे - धूमिल, पृ0 45-46

चतुर्थ अध्याय

धूमिल के काव्य की विषय वस्तु

धूमिल का भाव-जगत अत्यन्त व्यापक है। उन्होंने अपने काव्य में केवल वैयक्तिक अनुभूतियों को ही स्थान नहीं दिया है, अपितु अपने समकालीन समाज में व्याप्त विसंगतियों एवं विडम्बनाओं को आत्मसात किया है और समाज के जन-सामान्य की घुटन, पीड़ा एवं संत्रास को बड़ी शिद्दत के साथ रेखांकित किया है। काव्य-सृजन एक प्रकार की साधना है जो प्रत्येक जन की शक्ति एवं सामर्थ्य से परे है। काव्य के प्रणयन हेतु विशेष प्रकार की 'प्रतिभा' की आवश्यकता होती है। 'कवि अपनी प्रतिभा द्वारा अन्तर्मन की गुहा में सुप्तावस्था में पड़े अस्पष्ट एवं अरूप भावों और विचारों को रूपायित करता है।[1] कवि में जीवन मूल्यों के प्रति गहरी प्रतिबद्धता और सार्वकालिक दृष्टि-बोध होता है जिसके कारण उसका काव्य-फलक विस्तृत होता है। कवि की प्रतिभा निरन्तर नये-नये विषयों का संस्पर्श करती है।

धूमिल का साहित्यिक जीवन अल्प ही रहा लेकिन उनके प्रकाशित तीनों संग्रहों के कथ्य क्या संदेश देते हैं, यह तय कर पाना बहुत कठिन है। लोक जीवन से स्वतंत्र विचार लेकर उन्होंने अपनी कविताओं में प्रस्तुत किया है और वह निश्चित रूप से अतुलनीय है। 'संसद से सड़क तक' के आरम्भ में उन्होंने लिखा है - "एक सही कविता पहले एक सार्थक वक्तव्य होती है।"[2] इन्हीं पक्तियों से पाठक नयी कविता और समकालीन विरोध की कविता का दृष्टिगत अन्तर स्पष्ट समझने लगता है। नयी कविता में बिम्बों, प्रतीकों तथा शब्दों की नवीनता एवं उनके प्रयोग पर बल दिया गया है जबकि समकालीन कविता में वक्तव्यों एवं उसकी सार्थकता पर। धूमिल कथ्य के स्तर पर कहीं न कहीं मुक्तिबोध और राजकमल चौधरी से प्रभावित नजर आते हैं। डॉ. अतुलवीर अरोड़ा के शब्दों में - "युवा कवियों में अपनी वैयक्तिक विशिष्टता के कारण धूमिल का नाम नयी कविता के शिल्पियों में विशेष उल्लेखनीय है।

पाठक के मानस को झकझोरने वाली एवं तीखी किन्तु परिचित भाषाओं में रची गयी इनकी कविता सत्य का बेबाक चित्रण करती है। अन्य कवियों की अपेक्षा इनकी कविताएँ अधिक उजड्ड, मुँहफट एवं ढीठ ढंग की है। यह उजड्डपन आकस्मिक इसलिए नहीं लगता, क्योंकि धूमिल की कविता का संसार धूमिल के निजी और वैयक्तिक (व्यक्तिगत भी) स्वभाव एवं बर्ताव का यह संसार है, जिनके सहारे वह पूरे परिवेश के मिजाज को परखता है और उसके साथ पेश आने के लिए अपने सामाजिक चेहरों की रेखाएँ सँभालता हुआ कविता के इलाके के अन्दर दाखिल होता है।"[3]

कविता की अन्तर-चेतना का सम्बन्ध कवि की अनुभूतियों तथा भावनाओं से होता है जो पर्याप्त महत्वपूर्ण हैं। क्योंकि इस आन्तरिक शक्ति के अभाव में कविता के काव्य की विषय वस्तु में विविधता है। व्यक्ति से लेकर राष्ट्र तक की समस्यायें उनके काव्य में उभरकर सामने आयी हैं। छोटे से छोटे और बड़े से बड़े विषय पर उनकी दृष्टि पड़ी। दूसरे शब्दों में, उनका काव्य समकालीन समाज का दर्पण है जिसमें सबके चेहरे बार-बार सामने आते हैं।

सामाजिक चेतना

भारत की स्वतंत्रता के बाद बुद्धिजीवी संस्थाओं और विचारधाराओं ने सामाजिक बदलाव की तरफ. अग्रसर होना प्रारम्भ कर दिया। परम्परागत मान्यताओं और सामाजिक रूढ़िगत रीति-रिवाजों के स्थान पर प्रायः उत्साहजन्य विचारों की बात की जाने लगी। लेकिन एक बात लगभग तय थी कि जब तक समाज में आर्थिक बदलाव नहीं आयेगा तब तक सामाजिक सुधार की कल्पना उचित नहीं होगी। भारत एक लम्बे दौर से परतंत्रता झेल रहा था। जो आया लूटा और चला गया। सामाजिक अनुभूतियों की किसी ने परवाह नहीं की, जिसके कारण भारत विसंगतियों से घिर गया था। स्वतंत्रता के बाद भारतीय समाज ने अपनी एक नई तस्वीर देखनी शुरू कर दी जिसमें समाज एक ओर सामुदायिक जीवन की आन्तरिक प्रेरणाओं का समाज होगा और दूसरी ओर व्यक्ति को पूरी तरह स्वतंत्रता दी जायेगी। वास्तविकता एकदम से उलटी नजर आने लगी। भारत के जनमानस ने जिस स्वतंत्र भारत का सपना देखा था वह हकीकत में बड़ा वीभत्स नजर आया। इस काल्पनिक समाज का सपना ऐसे शासकों के हाथ में चला गया जहाँ एक तरफ पूँजीवादी व्यवस्था की अनेक बुराइयाँ थी तो दूसरी ओर जनता को मृगमरीचिका में भटकाने की गहरी साजिश थी। इन्हीं विसंगतियो- विडम्बनाओं के फलस्वरूप सातवें दशक में साहित्य ही नहीं समाज में भी जबरदस्त आक्रोश और विद्रोह पनपा। तत्कालीन युवा वर्ग ने समाज में व्याप्त विषमताओं के प्रति विद्रोह का सिंहनाद किया।

कविता विहीन मानव समाज न मानवीय हो सकता है और न मानव सामाजिक ही। वह व्यावसायिक, अफसरशाही, तानाशाही, यंत्रचालित रोबोट समूह हो सकता है। कविता सब में जन्मी है, यानि मनुष्य सबसे जन्मा है, वह उसके भावात्मक, विचारात्मक, सौन्दर्यबोध मूलक और सांस्कृतिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती आयी है। उसे सामान्य, सतही सामाजिक, आर्थिक राजनीतिक उपयोगिता के मापदण्ड से नापने की कोशिश करना उसकी उच्चतर सांस्कृतिक उपयोगिता को अनदेखा करना है। व्यक्ति को बदलना होगा, समाज के इन घिसे-पीटे रूढ़िगत

मान्यताओं से आगे बढ़ना होगा। परिवर्तन प्रकृति है इस तथ्य को मन में बिठाकर नये समाज का निर्माण करना होगा। जो ठहर गया, समझो उसका अस्तित्व समाप्त हो गया। धूमिल का मानना है कि ठहरा हुआ आदमी हिंसक भीड़ में दब जाता है। देश में हत्यारों की हत्या की जरूरत है –

भय और अनिश्चय के दुहरे दबाव में
पता नहीं कब और कैसे और कहाँ –
कितने नामों और चिन्हों और शब्दों को
काटते हुए मैं चीख पड़ा –
'हत्यारा ! हत्यारा !! हत्यारा !!![4]

धूमिल की रचनाओं को यदि बारीकी से देखा जाये तो एक बात सबसे ज्यादा खटकती है, कि धूमिल 'सड़क' को 'संसद तक क्यों जोड़ना चाहते हैं। 'संसद से सड़क तक' नाम की कोई कविता न होने के बावजूद भी उन्होंने अपने पहले संग्रह का नाम 'संसद से सड़क तक' रखा। इसका तात्पर्य है कि कहीं न कहीं उनका विद्रोह-विरोध इन दोनों से ही है। 'धूमिल की कविता का प्रमुख स्वर भी व्यवस्था-विरोध का है। शोषण पर आधारित इस बीमार व्यवस्था के निषेध को वह कविता जनतंत्र के खात्मे से जोड़ती है। उन्हें तमाम बीमारी की जड़ संसदीय व्यवस्था में दिखाई देती है, वे इस व्यवस्था के अमानवीय चरित्र का उद्घाटन करते हैं। चूँकि संसद में बहुमत शोषक वर्ग का ही रहा, इसलिए धूमिल की कविताओं का वाचक संसद में कोई आस्था नहीं रखता, वह इस तरह के जनतंत्र के नष्ट होने की कामना करता है। आखिकार निम्नमध्यम वर्ग की संवेदनशील प्रकृति और कुछ सोच भी क्या सकती है? कवि इस व्यवस्था से लड़ना चाहता है लेकिन यह व्यवस्था नहीं अपितु अपराधियों का झुण्ड है जो मातृभाषा को भी बेचने में संकोच नहीं करता –

यह जानकर कि तुम्हारी मातृभाषा
उस महरी की तरह है, जो
महाजन के साथ रात-भर
सोने के लिए
एक साड़ी पर राजी है
सिर कटे मुर्ग की तरह फड़कते हुए
जनतंत्र में
सुबह –
सिर्फ, चमकते हुए रंगों की चालबाजी है
और यह जानकर भी, तुम चुप रहोगे

या शायद, वापसी के लिए पहल करने वाले
आदमी की तलाश में।[5]

भारत की आजादी के बाद स्त्रियों की सामाजिक सुरक्षा देने के अनेक वायदे किये गये। समाज में समान दर्जा, समान स्वतंत्रता, परम्परागत अनेक रूढ़ियों से मुक्ति, अब नारी पति को देवता न मानकर मित्रवत व्यवहार करे जैसे अनेक कानून पारित हुए। लेकिन कानून फाइलों में बनते हैं, जबकि असली रूप समाज का कुछ और ही रहा। आज भी आम भारतीय नारियों को उन्हीं पुरातनपंथी विचारधाराओं में जीना पड़ रहा है। आज भी स्वतंत्रता-समानता का मूल्य विकसित नहीं हो पाया है। धूमिल अपनी कविताओं के माध्यम से नारियों को स्वयं आगे आने का आह्वान करते हैं। उनका मानना है कि कानून बना देने मात्र से समाज में कोई बदलाव नहीं आता है। बदलाव लाने के लिए समाज को ही आगे बढ़ना पड़ता है।

'कल सुनना मुझे', 'संग्रह की आतिश के अनार सी वह लड़की' शीर्षक कविता के माध्यम से धूमिल नारियों को चेतावन्नी देते हुए कहते है -

ओ प्यारी भाभियों !
ओ नटखट बहिनों !
सिंगार-दान को छुट्टी दे दो
आइने से कहो वह कुछ देर अपना अकेलापन घूरता रहे।
कंघी को झड़े बालों की याद में गुनगुनाने दो
रिबन को फेंक दो 'बाडिस' की अलगनी पर
यह चोटी करने का वक्त नहीं और न बाजार का?
बालों को ऐंठकर जूड़ा बाँध लो
और सबके सब मेरे पास आ जाओ,
देखो, मैं एक नई और ताजा खबर के साथ घर की दहलीज
पर खड़ा हूँ।[6]

कोरी प्रगतिवादी रचना करना और समाजवाद की मात्र दुहाई देना समकालीन कवियों ने देखा और उससे बदलाव की सम्भावना को परखा था। इस सन्दर्भ में अज्ञेय का कथन है कि सामाजिक उत्तरदायित्व ओढ़ लेने से ही कृतित्व के क्षेत्र में कोई समस्या हल नहीं होती- इतना ही होता है कि रोजमर्रा जीवन में काम आने वाली 'प्रयोजनवती भाषा' का व्यवहार करते समय आप अधिक सतर्क हो जाते हैं - चाहे प्रयोजनों के सामाजिक मूल्यांकन में, चाहे अपनी बात और काम (या अपनी नीयत) में सामंजस्य के मूल्यांकन में। यानि आप रह जाते हैं सामाजिक मूल्यों के क्षेत्र में

बजाय वह उसे यथास्थिति में स्वीकारने में अपनी नियति समझती है। धूमिल के शब्दों में –

लोग बिलबिला रहे हैं (पेड़ों को नंगा करते हुए)
पत्ते और छाल
खा रहे हैं
मर रहे हैं, दान
कर रहे हैं।
जलसों- जुलूसों में भीड़ की पूरी ईमानदारी से
हिस्सा ले रहे है और
अकाल को सोहर की तरह गा रहे है।
झुलसे हुए चेहरों पर कोई चेतावनी नहीं है।[9]

समकालीन कविता का कवि अपने आप को वर्तमान विशेषताओं से घिरा पाता है। धूमिल अपनी कविताओं के माध्यम से आत्म-संघर्ष की अभिव्यक्ति करते है। उनकी कविताओं की जिजीविषा इतनी प्रबल है कि अस्तित्व को बचाने का हर संभव प्रयास करती है इसलिए अर्थ की तलाश कर लेती है। कवि यह जानता है कि उसका बाह्य और आन्तरिक स्वरूप भिन्न है। वह दोहरे व्यक्तित्व में जी रहा है। कवि ही नहीं बल्कि आज का हर मानव दोहरी भूमिका निभा रहा है। वह आसानी से मिट नहीं सकता है। धूमिल का अस्तित्व बहुआयामी है जिसमें पीड़ा और वेदना की प्रमुखता है। भयावह व्यवस्थाओं से होने वाले संघर्ष में वेदना का भाव है। यथार्थ के कठोर धरातल पर दर्द की गहरी छाप है। इसलिए कोमलता के स्थान पर परूषता आ गई है। धूमिल के काव्य में करूणा का भाव अस्मिता को पहचानने के लिए है, भले ही इसके लिए उन्हें समाज की सारी गन्दगी को ही क्यों न कुरदेना पड़े। धूमिल के शब्दों में –

नहीं अपना कोई हमदर्द
यहाँ नहीं है। मैंने एक-एक को
परख लिया है
मैंने हरेक को आवाज दी है
हरेक का दरवाजा खटखटाया है
मगर बेकार . . . । मैंने जिसकी पूँछ
उठाई है उसको मादा
पाया है।
वे सब के सब तिजोरिये के
दुभाषिये हैं।

वे वकील हैं वैज्ञानिक हैं।
अध्यापक हैं। नेता हैं। दार्शनिक हैं।
लेखक हैं। कवि हैं। कलाकार हैं।
यानी कि –
कानून की भाषा बोलता हुआ
अपराधियों का एक संयुक्त परिवार है।[10]

धूमिल की उक्त पंक्तियाँ महज यथार्थ नहीं है, बल्कि जीवन और समाज का गहरा, तीखा व्यंग्य है। वर्तमान विडम्बनाओं से संघर्ष करते मानव को पग-पग पर इसकी अनुभूति होती है। उनके काव्य में यह इस तरह से समाहित हो गया कि उनका सम्पूर्ण काव्य ही यथार्थ और अस्तित्व पर व्यंग्य बन गया। कवि भीड़ में मुखौटा लगाये व्यक्ति से उसका वास्तविक चेहरा लाने को कहता है जो जुलूस में पीछे गिर गया है –

हाँ, हो सके तो बगल से गुजरते हुए आदमी से कहो
लो यह रहा तुम्हारा चेहरा,
यह जुलूस के पीछे गिर पड़ा था।[11]

धूमिल का मानना है कि समाज पूरी तरह विखंडित हो चुका है। इंसान-इंसान का दुश्मन बन गया है और एक दूसरे के खिलाफ खुला षडयन्त्र रच रहा है-

न कोई प्रजा है
न कोई तन्त्र है
यह आदमी के खिलाफ
आदमी का खुलासा
षडयंत्र है।[12]

धूमिल ने अपनी कविताओं के माध्यम से उन मेहनतकश मजूदरों को रेखांकित करने का सफल प्रयास किया है जो बंधुआ मजदूरी कर रहे हैं और खाने के नाम पर जूठन् ही उन्हें नसीब हो रही है। यह कैसी स्वतंत्रता है। क्या इसी का सपना लोगों ने देखा था। शायद यही परिवेशगत समस्यायें धूमिल को आक्रोशित करती हैं –

मालिक का सीझा हुआ चेहरा
जैसे बासी रोटी पर किसी
शरारती महराज ने
दो आँखे बना दी हों
थाली आते ही मेरी टाँगों के नीचे
एक कुत्ता आ जाता है
कुर्सी से कौर तक फिर वही कुकुरबू।[13]

धूमिल देश के उन ठेकेदारों पर तीखा व्यंग्य करते हैं जिन्होंने भारत में समन्वयवाद की रट लगा रखी थी। जबकि विडम्बनाएँ दिन-प्रतिदिन देश को खोखला करने में लगी थी। कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं -

सबसे अधिक हत्यायें समन्वयवादियों ने की
दार्शनिकों ने
सबसे अधिक जेवर खरीदा।
भीड़ ने कल बहुत पीटा -
उस आदमी को
जिसका मुख ईसा से मिलता था।[14]

एक अन्य उदाहरण द्रष्टव्य है-

कुछ की आँख से खून चू रहा था
नगर के मुख्य चौरस्ते पर
शोक प्रस्ताव पारित हुए,
हिजड़ों ने भाषण दिये
लिंग-बोध पर,
वेश्याओं ने कविताएँ पढ़ी -
आत्मशोध पर।
प्रेम मे असफल छात्राएं
अध्यापिकाएँ बन गई हैं
और रिटायर्ड बूढ़े
सर्वोदयी
आदमी की सबसे अच्छी नस्ल
युद्ध में नष्ट हो गई।[15]

धूमिल अपनी तत्कालीन समाजिक व्यवस्था से पूरी तरह जुड़े हैं। वे जीवन में ही नहीं अपनी कविता में भी यथार्थ के ठोस धरातल पर खड़े हैं। उनकी कविता उस संत्रस्त-प्रताड़ित मानव का दर्द मुखरित करती है जो सामाजिक घुटन, टूटन की यंत्रणा को सहन करता हैं। उनकी अन्तिम कविता इस बात को पूरी तरह से प्रमाणित कर देती है कि आम आदमी की सही व्यथा क्या है-

शब्द किस तरह
कविता बनते हैं
इसे देखो

अक्षरों के बीच गिरे हुए
आदमी को पढ़ो
क्या तुमने सुना है कि यह
लोहे की आवाज है या
मिट्टी में गिरे खून का रंग
लोहे का स्वाद
लोहार से मत पूछो
उस घोड़े से पूछो
जिसके मुँह में लगाम है।[16]

निष्कर्षतः धूमिल की कविता का स्वर व्यंग्यात्मक है। उनकी कविता पढ़ते समय एक खास तरह की उद्विग्नता, खीझ, आत्मग्लानि, असहायता और हताशा का अनुभव होने लगता है उनकी कविताओं में नाटकीयता और व्यंग्य एक साथ जीवन्त हो उठते हैं, और वे कविताएँ सामाजिक यथार्थ से सीधे जुड़ जाती हैं।

राजनीतिक चेतना

धूमिल ने जब काव्य-रचना प्रारम्भ की उस समय देश आजाद हो चुका था और कांग्रेस नेहरू के नेतृत्व में भारत में समाजवाद की स्थापना का स्वप्न देख रही थी लेकिन दुर्भाग्यवश इसी समय दो-दो युद्धों का सामना करना पड़ा। इन युद्धों के बाद जनता का मोहभंग शुरू हो गया। आजादी से जो कामनाएँ आकांक्षाए जनता ने पाली थी वह बिखरनी प्रारम्भ हो गई जीवन-यापन, अशिक्षा और मूलभूत बेरोजगारी आदि समस्याएँ सुरसा की तरह मुँह खोले खड़ी थी। 1967 के आम चुनाव में कांग्रेस को इसका खामियाजा भुगतना पड़ा। इसी बीच कई राज्यों में हिंसात्मक आन्दोलन हुए जिन्हें नक्सलवादी आन्दोलन कहा गया। इस प्रकार जनता के मन में दिन प्रति दिन अविश्वास बढ़ता गया।

धूमिल हिन्दी साहित्य के पहले कवि हैं जिनकी कविताएँ संसद में प्रवेश करती हैं। उन्होंने 'अकविता' आन्दोलन से अपनी काव्य-यात्रा का प्रारम्भ करके एक ऐसी अभिव्यक्ति को तलाशा जिसके माध्यम से ठोस जीवन-मूल्यों और राजनीतिक विसंगतियों को सही आकार मिल सकें। उन्होंने अपने पाठकों को राजनीतिक परिवेश के ठोस यथार्थ से अवगत कराया। धूमिल की राजनीतिक चिन्ता वैयक्तिक नहीं थीं बल्कि वह उस समय के पूरे समाज की चिन्ता थी। आजादी के बाद शासक वर्ग के द्वारा जनवादी मूल्यों और जन संवेदनाओं पर निरन्तर प्रहार होता रहा। ऐसी स्थिति में आम लोगों का जीवनयापन कठिन हो गया था। उस समय में वामपंथी राजनीति

में एक भटकाव का दौर आया जो नक्शलवादी आन्दोलन का रूप ले लिया। इन विडम्बनाओं का असर धूमिल के साहित्य पर भी पड़ा। इन आन्दोलनों का अतिक्रान्तिकारी दुस्साहसिक बोध और बड़बोलापन धूमिल की कविताओं में बड़े आक्रोश के साथ देखने को मिलता है। उनकी प्रसिद्ध कविता संग्रह 'संसद से सड़क तक' जहाँ सामाजिक यथार्थ के प्रति प्रखर चेतना की अभिव्यक्ति करती है वहीं दूसरी ओर राजनीतिक नाटकीयता का खुलासा भी करती हैं-

> हाँ यह सही हैं कि कुर्सिया वही हैं,
> सिर्फ टोपियाँ बदल गयी हैं।
> या फिर यू कहिये कि -
> न कोई प्रजा है/न कोई तंत्र है
> यह आदमी के खिलाफ/आदमी का खुलासा
> षड्यन्त्र है।[17]

इस देश की संसद रोटी के सवाल पर मौन है। भूख और आवास की समस्या पर संसद कुछ समाधान नहीं निकाल पा रहीं है। आज हमारे देश में अधिकांश पेट खाली हैं अंग विवस्त्र हैं ऐसे में संसद का मौन होना और रोटी, कपड़ा, मकान का आश्वासन देना दिवास्वप्न लग रहा है। धूमिल ने समाज की इन समस्याओं को भाँपते हुए लिखा -

> सहसा हम क्यों चाहने लगते हैं, हमारे सिरों पर छत हो।
> (जनतांत्रिक) वर्षा में धुली हुई
> क्या यह खुली सड़क काफी नहीं है,
> (सच्चाई और शोहरत के बीच बिछी हुई संसद तक)
> फिर हम एक छत क्यों चाहते हैं जब कि यह
> सही कवियों और तुक्कड़ों की
> पहचान का समय है?[18]

समाज में आम जीवन जीने वाला व्यक्ति खाली पेट झुलस रहा है। हर तरफ स्वतंत्रता है लेकिन रोटी की समस्या ज्यों की त्यों है। दंगे, आन्दोलनों के माध्यम से आम आदमी अपने आक्रोश को दिखाने का प्रयत्न कर रहा है लेकिन स्वतंत्र भारत की संसद उसे देखना नहीं चाहती या अनदेखी कर रही है, मौन हैं ब्रिटिश देश से चले गये लेकिन व्यवस्थाएँ वैसी ही हैं। आम आदमी आज भी रोटी-कपड़े की लड़ाई लड़ रहा है।

धूमिल का मानना है कि जब तक हमारे विचार नहीं बदलेंगे तब तक पेट की

भूख समाजवाद की भेंट चढ़ती रहेगी। 'लोकतंत्र' का नारा देने से लोकतंत्र नहीं आता उसमें वैचारिकता आवश्यक है –

वे घर की दीवारों पर नारे
लिख रहे थे
मैंने अपनी दीवारें जेब में रख लीं
उन्होंने मेरी पीठ पर नारा लिख दिया
और अब पेट की बारी थी
मैं खुश था कि मुझे मन्दाग्नि की बीमारी थी
और यह पेट है
मैंने उसे सहलाया
मेरा पेट
समाजवाद की भेंट है
और अपने विरोधियों से कहला भेजा
वे आएँ और साहस है तो लिखें,
मैं तैयार हूँ
न मैं पेट हूँ
न दीवार हूँ
न पीठ हूँ
अब मैं विचार हूँ।[19]

धूमिल ने दुनिया को, खासकर भारत की जनता को यहाँ की राजनीतिक विडम्बना को अपनी आँखों से दिखाया है। खास तौर पर भारत-चीन और भारत-पाक युद्ध के बाद की वीभत्सतापूर्ण दृष्टि से कवियों एवं आम जनता को 'समाजवाद' और राजनेताओं की असलियत से अवगत कराया। लोगों को बताया कि सच में 'समाजवाद' एक हथियार के रूप में राजनेता प्रयोग कर रहे हैं –

भूख और भूख की आड़ में
चबायी गयी चीजों का अक्स
उनके दाँतों पर ढूँढ़ना
बेकार है। समाजवाद
उनकी जुबान पर अपनी सुरक्षा का
एक आधुनिक मुहावरा है।[20]

धूमिल की दृष्टि में देश की आजादी का कोई अर्थ नहीं है। उनकी दृष्टि में

आजादी का मतलब है 'समाजवाद'। लेकिन जिस समाजवाद की बात नेता कर रहे हैं वह पूरी तरह से खोखला है। शायद इसी कारण धूमिल काफी निराश हो जाते हैं। सही अर्थों में देखा जाय तो धूमिल एक सच्चे जनकवि के रूप में लोगों के बीच आते हैं, उन्हें भ्रम-जाल से निकालने का प्रयत्न करते हैं और संसद से सड़क तक के यथार्थ को बताते हैं। धूमिल का साहित्य राजनीतिक चेतना, अव्यवस्था, लोकतंत्र के भ्रष्टाचार, चुनाव, संसद, समाजवाद इन सभी का विरोध करता नजर आता है। इन विसंगतियों को समाज से कैसे दूर किया जाय इसका उत्तर सम्भवतः उनके पास भी नहीं है। क्योंकि समाजवाद और क्रांति का स्वप्न देखने वाले भी धूमिल की नजर में अकर्मक हैं। समाजवाद, देशभक्ति जनतंत्र और आजादी की परिभाषा करते समय धूमिल का आक्रोश कितना व्यंग्यात्मक हो जाता है इसके कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं -

"मगर मैं जानता हूँ कि मेरे देश का समाजवाद
माल गोदाम में लटकी हुई
उन बाल्टियों की तरह हैं जिस पर 'आग' लिखा है
और उनमें बालू और पानी भरा है।"[21]

"जो दाँतों और दलदलों का दलाल है
वही देश भक्त है।"[22]

"दरअसल, अपने यहाँ जनतंत्र एक ऐसा तमाशा है
जिसकी जान
मदारी की भाषा है।"[23]

"क्या आजादी तीन थके हुए रंगों का नाम है
जिन्हें एक पहिया ढोता है
या इसका कोई खास मतलब होता है?[24]

धूमिल अपनी कविताओं में अनेक स्थलों पर प्रश्नात्मक मुद्रा में दिखाई पड़ते हैं, जिनका सही उत्तर समझना बुद्धिजीवी वर्ग के लिए कठिन है।

धूमिल ने इस बात को स्वीकारा है कि देश में "न कोई प्रजा है और ना ही प्रजातंत्र"। स्वतंत्रता के बाद जो सपना आम लोगों ने देखा था वो तो खोखला साबित हुआ। बल्कि स्वतंत्र भारत की आबो-हवा और बदल गई। धूमिल के शब्दों में -

जहाँ हवा काली है। जीने का
जोखिम है। समझो . . . ? . . . का
वयस्क लोकतंत्र है आदमी
होने का स्वाद है।[25]

एक तरफ भुखमरी है दूसरी तरफ अनाज देश से बाहर जा रहा है। देश में अकाल है और संसद के पास कोई जवाब नहीं है। फाइलों पर योजनाएँ बन रही हैं। शायद अकाल से, भूख से भी शासक वर्ग निपट लेने का दम्भ भर रहा है। लेकिन भारतीय समाज का स्वरूप घृणा को पार कर रहा है। धूमिल में जो आक्रोश है उसका मूल कारण यह है कि वह जन सामान्य से अपने को जोड़े रखते हैं। एक उदाहरण -

हथेलियों पर गिरते हुए चेहरे का शोर है
दूर बहुत दूर
रात अपने आने का रास्ता बना रही है
क्षितिजों के पार काले धमाकों की गर्द छा रही है
दूर तक फैलती हुई धुन्ध -
जिसका न ओर है न छोर है
अकाल में हर आदमी को भूखा रहने का पूरा अधिकार है।
हर रोज -
सूर्यास्त के साथ अनाज लदे किसी जहाज की गंध हवा में
तैरती है सैकड़ों मुख
समुद्र की ओर घूम जाते हैं।
मरा हुआ आदमी सिर्फ भूखमरी का पैमाना हो गया है
उन्हें रसोई घर की सहानुभूति के अलावा तुम क्या देते हो?[26]

ऐसी अनेक राजनीतिक विडम्बनाओं से धूमिल का काव्य भरा पड़ा है। उनके साहित्य में विडम्बना के दो ही स्वर सर्वाधिक मुखर हैं - राजनीति के झूठे वादे और 'समाजवाद' के नाम पर आम आदमी को छलने की साजिश जो उन्हें मृत्यु शैय्या तक चैन से जीने नहीं देते। धूमिल से पूर्व रघुवीर सहाय ने अपनी कविताओं में राजनीति को केन्द्र में रखा है। किन्तु धूमिल ने उनसे भी आगे जाकर अपनी कविताओं में राजनीतिक विकृतियों को बड़ी शिद्दत के साथ प्रस्तुत किया है। यद्यपि 'संसद से सड़क तक' उनकी कोई कविता नही है फिर भी अपने प्रथम काव्य संग्रह का नाम उन्होंने रखा। इसके अतिरिक्त अनेक ऐसे शब्दों का भी प्रयोग किया है जो किसी न किसी रूप में राजनीति से जुड़े हैं, जैसे- 'गाँधी के तीन बन्दर' 'मेकमोहन रेखा' 'बजट का अँधेरा', विदेशी मुद्रा, 'जलता जनतंत्र', प्रजातंत्र, अणुबम के मसौदे, नारे, आन्दोलन, कुर्सियां, चुनाव, संविधान की धाराएँ, पंचवर्षीय योजनाएँ आदि।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि धूमिल अपने अल्प साहित्यिक जीवन में संसद को सड़क तक जोड़ने के लिए कटिबद्ध नजर आते है। उनकी कविताओं को मात्र सपाटबयानी कहना उचित नहीं लगता क्योंकि कवि ने हर शब्द को एक नई भंगिमा दी है।

आधुनिकता बोध

आधुनिकता से अभिप्राय है वर्तमान या निकट अतीत का साहित्य।[27] साहित्येतिहास। लेखकों ने अंतिम चरण के हिन्दी साहित्य को आधुनिक माना है। कहने का तात्पर्य है कि जिस साहित्य में समसामयिक युग की प्रवृतियों के प्रति आकर्षण हो और कवियों में उनके प्रति दायित्वबोध उसे आधुनिक साहित्य की संज्ञा दी जा सकती है। लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि आधुनिक और समसामयिक दोनों एक हैं। हाँ कुछ भिन्नताओं के साथ कहा जा सकता है कि युग सापेक्षता ही समसामयिकता है, किन्तु आधुनिकता में जीवन्त नवीन मानव मूल्यों को अपनाने की अद्भुत क्षमता है और यह सतत् परिवर्तनशील और विकासशील है। इस प्रसंग में रामधारी सिंह दिनकर का चिन्तन सार्थक और मौलिक प्रतीत होता है – ''क्या परम्परा का पालन नवीनता की उपेक्षा करके करना होगा? भारत की संस्कृति और परम्परा बहुत पुरानी है। हम ऐसे घर में जी रहे है, जो बड़ा तो है, मगर बहुत पुराना है। यह घर शताब्दियों, सहस्राब्दियों के असबाबों से खचाखच भरा हुआ है। कहीं ऐसा तो नहीं है कि नये असबाबों को हम उपेक्षित कोने मे डालते जा रहे हैं? संस्कृति, परम्परा और इतिहास जब लम्बे और समृद्ध होते हैं, वे दमघोंटू बन जाते हैं और वर्तमान को ठीक से साँस भी नहीं लेने देते। अश्वत्थ का मोटा और विशाल वृक्ष जो छाया तो खूब देता है, मगर अपने नीचे की जमीन पर पौधों को उगने नहीं देता।[28]

यदि दिनकर के चिन्तन को देखा जाये जो एक बात स्पष्ट हो जाती है कि समकालीन कविता या नयी कविता के विकास में यह ठीक ही है, क्योंकि समकालीन कविता में नवीन मानव मूल्यों का निरन्तर अन्वेषण दृष्टिगत होता है। इन्हीं बिन्दुओं को रेखांकित करते हुए डॉ0 परमानन्द श्रीवास्तव अपने एक लेख में कहते हैं – ''आधुनिकता वस्तुतः आधुनिक दृष्टि ही है जो व्यक्ति समाज को एक उत्तेजक द्वन्द्वात्मक रिश्ते के बीच देख सकने की संभावना का इसलिए उपयोग करती है कि वही काल और स्थान को सहज देखना और पाना भी है। आज की कविता 'भारतीयता' को सिर्फ गौरवबोध में रिड्यूस नहीं करती, वह भारतीय समाज के विभिन्न स्तरों पर चलने वाले संघर्षों से सीधे जुड़कर ही अपनी काव्यात्मक प्रासंगिकता उपलब्ध कर सकती है।[29]

आधुनिकता के जितने आयाम हो सकते हैं वे सब समकालीन हिन्दी कविता में लक्षित होते हैं। चाहे अनास्था, कुंठा, संत्रास एवं मूल्यों के विघटन की बात ही क्यों न हो। समकालीन कविता ने मृत्यु तुल्य मूल्यों को अस्वीकार करके जीवन्त मूल्यों को अपनाने की सफल चेष्टा की है।[30]

आधुनिकता के कारण पुराने मूल्यों के प्रति मानव का मोहभंग हुआ है। इसका बहुत कुछ उत्तरदायी विज्ञान भी है। वैज्ञानिक क्रांति के साथ-साथ मार्क्सवाद, अस्तित्ववाद तथा आधुनिकताबोध ने साठोत्तरी मानव के चिन्तन में परम्परा के प्रति अविश्वास पैदा कर दिया। धर्म, दर्शन, ईश्वर, प्राचीन मान्यताओं और परम्पराओं को मानव ने अस्वीकार कर दिया। अस्तित्व का संकट असन्तोष, विद्रोह तथा अकेलेपन की भावनाएँ इन्हीं जीवन पद्धतियों की देन हैं। इन जीवन दृष्टियों के प्रभाव से साहित्य भी (कविता) अछूता न रह सका।[31]

धूमिल की कविताओं में आधुनिकता बोध के स्वर मिलते हैं। उनकी यह आधुनिकता उनके अन्तर्विरोधों को बल देती है। 'आदमी होने की तमीज' को पूरी तरह से परिभाषित भी करती है। 'संसद से सड़क तक' काव्य संग्रह का आरम्भ धूमिल इन पंक्तियों से करते हैं -

> उसे मालूम है कि शब्दों के पीछे कितने चेहरे नंगे हो चुके हैं
> और हत्या अब लोगों की रूचि नहीं -
> आदत बन चुकी है।[32]

धूमिल का मानना है कि इस दोगलेपन की आदत को दूर करने का एक ही उपाय है कि अंधेपन को दूर किया जाये। आज समाज में रूढ़िगत जड़ता है। जरूरत है कविता के माध्यम से मुनासिब कार्यवाई की। इस जड़ता को तोड़ने के लिए धूमिल को अश्लील एवं भदेस शब्दों का प्रयोग भी करना पड़ा जिसके कारण उन्हें आलोचकों के तीखे व्यंग्य बाण भी सहने पड़े। लेकिन यदि उन कविताओं के सन्दर्भ को देखा जाय तो धूमिल का यह नंगापन किसी हद तक युक्तिसंगत भी प्रतीत होता है। समाज में इतनी विसंगतियाँ है, इतने तरीके के मुखौटे हैं जिन्हें असली रूप में लाने के लिए भदेसपन का सहारा कवि को लेना पड़ा है। यह उसकी आवश्यकता नहीं विवशता भी है। "सौन्दर्यबोध की यह नवीन परिकल्पना आज की रचना प्रक्रिया का एक विशिष्ट अंग है जिसके कारण वह कुरूपता, गन्दगी, फूहड़पन, विद्रोह, मुक्ति और झुंझलाहट की भंगिमाओं से युक्त होकर अपने तीखे तेवर प्रकट कर रही है। आधुनिक कविता में सामाजिक गंदगी अथवा विसंगति को सर्जना के स्तर पर भोगे हुए यथार्थ के रूप में ईमानदारी से अभिव्यक्त किया जा रहा है।[33]

धूमिल के काव्य-सृजन में आधुनिकताबोध परिवेश की घुटन और पीड़ा की अभिव्यक्ति से जन्म लेती है। उनकी सबसे बड़ी पीड़ा आम आदमी की दासतापूर्ण जिन्दगी और खास आदमी के ऐशो आराम भरी जिन्दगी है। धूमिल के साहित्य में घुटन का जो रूप दिखायी पड़ता है उसके मूल में नेता, संसद, और शोषक है -

एक आदमी
रोटी बेलता है
एक आदमी रोटी खाता है
एक तीसरा आदमी भी है
जो न रोटी बेलता है, न रोटी खाता है
वह सिर्फ रोटी से खेलता है,
मैं पूछता हूँ -
'यह तीसरा आदमी कौन है?
मेरे देश की संसद मौन है।[34]

संसार की सामाजिक व्यवस्था के परिर्वतन में आज दो प्रकार की शक्तियाँ काम कर रही हैं-शस्त्रों की और जनतांत्रिक मूल्यों की। आज विश्व इन्हीं दोनो पद्धतियों के इर्द-गिर्द घूमता नजर आ रहा है। आज समाज व्यवस्था में विचार-प्रक्रिया, राजनैतिक घटनाएँ, इतिहास-बोध, नगर-बोध ही नहीं बल्कि आम आदमी की समग्र आकांक्षाए चाहे वह सांस्कृतिक हो या सामाजिक सभी आधुनिकता-बोध से जुड़ गई है। धूमिल अपने साहित्य में आम आदमी के बदलाव की छटपटाहट को बड़ी शिद्दत से पेश करते हैं। उनकी संवेदनाएं तकनीकी पद्धति की न होकर जन सामान्य के भावों और विचारों को आत्मसात किये हुए है। धूमिल की कविताओं में आधुनिकता भी कटुता और तनाव को अभिव्यक्ति देने में चूकती नहीं है -

हर तरफ ऊब थी
संशय था
नफरत थी
मगर हर आदमी अपनी जरूरतों के आगे
असहाय था। उसमें
सारी चीजों को नये सिरे से बदलने की
बेचेनी थी, रोष था :
लेकिन उसका गुस्सा
एक तथ्यहीन मिश्रण था :
आग और आँसू और हाथ का।[35]

विसंगति एवं विडम्बना बोध

साठोत्तरी हिन्दी-कविता की प्रायः सभी विशिष्ट धाराओं की एक मुख्य प्रवृत्ति परम्परा का निषेध है। इसे दूसरे शब्दों में 'अस्वीकृति का नवोन्मेष कह सकते हैं। यह

अस्वीकृति परम्परा और प्रचलित परिपाटी का विरोध है, विद्रोह है। सन् साठ के आस-पास हिन्दी कविता के क्षेत्र में बदलाव नजर आ रहा था और यह बदलाव एक बिन्दु अथवा दिशा की ओर अवश्य था, परन्तु उसकी स्पष्ट रेखा नहीं खींची जा सकती है।[36]

जीवन से साहित्य का सीधा सरोकार है। हर युग का साहित्यकार सामाजिक एवं सामायिक घटनाओं को अपने साहित्य का कथ्य बनाता है। आधुनिक हिन्दी साहित्य मे सन् साठ के बाद एक बड़े बदलाव को देखा जा सकता है। स्वतंत्रता के पूर्व देखा गया कि स्वराज्य एवं सुराज का सपना सन् साठ तक आते-आते पूरी तरह से टूट चुका था।

समाज मोहभंग के बाद की घुटन भरी जिन्दगी जीने पर विवश था। समाज में विसंगतियों और विडम्बनाओं ने घात-प्रतिघात करना प्रारम्भ कर दिया था। ऐसे में आदर्श या कोरा यथार्थ जैसी मान्यताओं का हनन होने लगा था और होना भी जरूरी था क्योंकि जब मोहभंग, और आत्मसंघर्ष का समय आता है तो भाषा से आदर्श स्वयं गायब होने लगता है। राजकमल चौधरी एवं धूमिल जैसे कवियों ने इन विडम्बनाओं और विसंगतियों को समाज के सामने लाने के लिए सबसे पहले भाषा और शैली में बदलाव लाने की बात की । उनका मानना था कि शब्दों को खोलकर ही समाज का यथार्थ चित्र खींचा जा सकता है। धूमिल एक तरफ आशान्वित नजर आते हैं तो दूसरी तरफ विघटित मूल्यों के स्थान पर नये मूल्यों की स्थापना भी करना चाहते हैं। वे कहते है -

कल सुनना मुझे
आज मैं लड़ रहा हूँ।"[37]

कवि 'लड़ रहा है' समाज से, इतिहास से और उस व्यक्ति से जो क्रांति से मुँह मोड़ रहा हैं। आज परम्परागत मूल्यों को तोड़ने में युवाओं को आगे आना पड़ेगा क्योंकि धूमिल की दृष्टि में खून के मूल्य का भी पतन हो रहा हैं -

बहता हुआ खून
जरूरत की जगह
जहमत बन गया है
अक्सर उठते हैं सवाल
कहाँ हैं युवा-जन?
परिवर्तन के अग्निचक्र?
क्षुधित इतिहास?[38]

एक आदमी
रोटी बेलता है
एक आदमी रोटी खाता है
एक तीसरा आदमी भी है
जो न रोटी बेलता है, न रोटी खाता है
वह सिर्फ रोटी से खेलता है,
मैं पूछता हूँ -
'यह तीसरा आदमी कौन है?
मेरे देश की संसद मौन है।[34]

संसार की सामाजिक व्यवस्था के परिर्वतन में आज दो प्रकार की शक्तियाँ काम कर रही हैं-शस्त्रों की और जनतांत्रिक मूल्यों की। आज विश्व इन्हीं दोनो पद्धतियों के इर्द-गिर्द घूमता नजर आ रहा है। आज समाज व्यवस्था में विचार-प्रक्रिया, राजनैतिक घटनाएँ, इतिहास-बोध, नगर-बोध ही नहीं बल्कि आम आदमी की समग्र आकांक्षाए चाहे वह सांस्कृतिक हो या सामाजिक सभी आधुनिकता-बोध से जुड़ गई है। धूमिल अपने साहित्य में आम आदमी के बदलाव की छटपटाहट को बड़ी शिद्दत से पेश करते हैं। उनकी संवेदनाएं तकनीकी पद्धति की न होकर जन सामान्य के भावों और विचारों को आत्मसात किये हुए है। धूमिल की कविताओं में आधुनिकता भी कटुता और तनाव को अभिव्यक्ति देने में चूकती नहीं है -

हर तरफ ऊब थी
संशय था
नफरत थी
मगर हर आदमी अपनी जरूरतों के आगे
असहाय था। उसमें
सारी चीजों को नये सिरे से बदलने की
बेचेनी थी, रोष था :
लेकिन उसका गुस्सा
एक तथ्यहीन मिश्रण था :
आग और आँसू और हाथ का।[35]

विसंगति एवं विडम्बना बोध

साठोत्तरी हिन्दी-कविता की प्रायः सभी विशिष्ट धाराओं की एक मुख्य प्रवृत्ति परम्परा का निषेध है। इसे दूसरे शब्दों में 'अस्वीकृति का नवोन्मेष कह सकते हैं। यह

अस्वीकृति परम्परा और प्रचलित परिपाटी का विरोध है, विद्रोह है। सन् साठ के आस-पास हिन्दी कविता के क्षेत्र में बदलाव नजर आ रहा था और यह बदलाव एक बिन्दु अथवा दिशा की ओर अवश्य था, परन्तु उसकी स्पष्ट रेखा नहीं खींची जा सकती है।[36]

जीवन से साहित्य का सीधा सरोकार है। हर युग का साहित्यकार सामाजिक एवं सामायिक घटनाओं को अपने साहित्य का कथ्य बनाता है। आधुनिक हिन्दी साहित्य मे सन् साठ के बाद एक बड़े बदलाव को देखा जा सकता है। स्वतंत्रता के पूर्व देखा गया कि स्वराज्य एवं सुराज का सपना सन् साठ तक आते-आते पूरी तरह से टूट चुका था।

समाज मोहभंग के बाद की घुटन भरी जिन्दगी जीने पर विवश था। समाज में विसंगतियों और विडम्बनाओं ने घात-प्रतिघात करना प्रारम्भ कर दिया था। ऐसे में आदर्श या कोरा यथार्थ जैसी मान्यताओं का हनन होने लगा था और होना भी जरूरी था क्योंकि जब मोहभंग, और आत्मसंघर्ष का समय आता है तो भाषा से आदर्श स्वयं गायब होने लगता है। राजकमल चौधरी एवं धूमिल जैसे कवियों ने इन विडम्बनाओं और विसंगतियों को समाज के सामने लाने के लिए सबसे पहले भाषा और शैली में बदलाव लाने की बात की । उनका मानना था कि शब्दों को खोलकर ही समाज का यथार्थ चित्र खींचा जा सकता है। धूमिल एक तरफ आशान्वित नजर आते हैं तो दूसरी तरफ विघटित मूल्यों के स्थान पर नये मूल्यों की स्थापना भी करना चाहते हैं। वे कहते है –

> कल सुनना मुझे
> आज मैं लड़ रहा हूँ।"[37]

कवि 'लड़ रहा है' समाज से, इतिहास से और उस व्यक्ति से जो क्रांति से मुँह मोड़ रहा हैं। आज परम्परागत मूल्यों को तोड़ने में युवाओं को आगे आना पड़ेगा क्योंकि धूमिल की दृष्टि में खून के मूल्य का भी पतन हो रहा हैं –

> बहता हुआ खून
> जरूरत की जगह
> जहमत बन गया है
> अक्सर उठते हैं सवाल
> कहाँ हैं युवा-जन?
> परिवर्तन के अग्निचक्र?
> क्षुधित इतिहास?[38]

धूमिल के समग्र साहित्य में विडम्बना और विसंगति ही देखने को मिलती है। कवि ने समसामयिक घटनाओं को कविताओं के माध्यम से उकेरने का सफल प्रयास किया है। आज के मानव की सबसे बड़ी विडम्बना यही है कि वह अपनी पूरी ताकत अपने से ही अर्थात् मानव से ही लड़ने में लगा दे रहा है। ईष्या, द्वेष, वैषम्य उसके हथियार बन गये हैं। ऐसी दशा में कई स्थानों पर इन विडम्बनाओं को सामने लाने के लिए कवि को कुछ भदेस शब्दों का भी प्रयोग करना पड़ता है, लेकिन वह इससे विचलित नहीं होता -

न कोई प्रजा है
न कोई तन्त्र है
यह आदमी के खिलाफ
आदमी का खुलासा
षडयन्त्र है।[39]

○ ○ ○

हर बार की तरह
तुम सोचती हो कि इस बार भी यह
औरत की लालची जाँघ से
शुरू होगा और कविता तक
फैल जायेगा।[40]

'राज कमल चौधरी' पर लिखी धूमिल की कविता में जिस तरह की भाषा या शब्दों का प्रयोग कवि सामाजिकता के वर्णन के लिए कर रहा है उसमें एक तरफ विसंगति-बोध नजर आता है तो दूसरी तरफ भाषा की छटपटाहट। कवि के शब्दों में -

मेरे देखते देखते
उसकी तसवीर के नीचे 'स्वर्गीय' लिखकर
फूलदान की बगल में
बुद्धिमानों का अन्धापन और अन्धों का विवेक
मापने के लिए
सफेद पालतू बिल्ली
अपने पंजो के नीचे से कुछ शब्द
काढ़कर रख देती है
अचानक सड़कें
इश्तिहारों के रोजनामचों में बदल जाती है

धूमिल के साहित्य में इतिहास मात्र अतीत की घटना और उस घटना का आधुनिक सन्दर्भ मात्र लेकर उपस्थित नही हुआ है। वह अन्न और पेट की भूख का इतिहास है। इतिहास से लिए गये सन्दर्भ समकालीन समाज की आवश्यकता है। जीवन की मूलभूत समस्या है जिससे लड़ना निश्चित रूप से अनिवार्य है। कवि जनमानस की मूल संवेदना को इतिहास से जोड़ता हुआ कहता है –

मगर मैंने सहसा महसूस किया कि
लहू का एक कतरा
गेंहूँ के दाने में गुनगुना उठा है
और इतिहास के मोड़ पर
एक जिन्दा परछाई गहरा गई है।[45]

यद्यपि धूमिल की यह कविता इतिहास व्यंग्य है लेकिन उनका यह व्यंग्य सत्य के निकट है। उनके साहित्य में इस तरह के इतिहास बोध अत्यधिक देखे जा सकते हैं। धूमिल का सम्पूर्ण साहित्य ही सत्य और यथार्थ के धरातल पर टिका है। उनकी आन्तरिक पीड़ा, घुटन कविता के माध्यम से बाह्य रूप में प्रकट होती हैं। कवि निरन्तर इस प्रक्रिया के कारण दुविधाग्रस्त रहता है। वह समझ नहीं पाता कि किस प्रकार अपनी अन्तर्वत्तियों को प्रकट करे और कुछ क्षण अपने को स्वतंत्र रख सके। इस द्वन्द्व का पूरा लेखा-जोखा उनकी लम्बी कविता 'पटकथा' में देखा जा सकता है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है –

खून और आँसू से तर चेहरा
मुस्कराया था। उसकी आँखों का हरापन
उसकी आँखों में उतर आया था –
"दुखी मत हो। यही मेरी नियति है।
मैं हिन्दुस्तान हूँ जब भी मैंने
उन्हें उजाले से जोड़ा है
उन्होंने मुझे इसी तरह अपमानित किया है
इसी तरह तोड़ा है।
मगर समय गवाह है
कि मेरी बेचैनी के आगे भी राह है।"[46]

इतिहास की व्याख्या विद्वानों-इतिहासकारों ने अपने-अपने ढंग से की है लेकिन एक बात सभी इतिहासकार स्वीकार करते हैं कि इतिहास का सीधा सम्बन्ध मानव से है, उसकी अनुभूतियों से है। आधुनिक विचारकों-मार्क्स डार्विन,

हीगल आदि ने इतिहास को वैज्ञानिक भौतिकवाद से जोड़ा है और माना है कि इतिहास अनुभव और विकास की परम्परा है। मानव को ज्ञान इतिहास और अतीत के यथार्थ से ही प्राप्त होता है। मुख्यतः देखा जाये तो इतिहास काल बिम्बों (प्रतीक) का अनुभव है जो साहित्यकारों के साहित्य में दृष्टिगत होता है। साहित्यकार इतिहास के प्रतीकों को आधार बनाता है और उसे नवीन सन्दर्भ में प्रस्तुत कर देता है। समकालीन कविता में भी धूमिल का साहित्य इससे अछूता नही रहा है। उनके द्वारा प्रयुक्त प्रतीक गतिशील और विकासात्मकता को व्यक्त करते हैं। धूमिल के साहित्य में संघर्षरत आधुनिक मानव की पीड़ा का जो दर्द है वह ऐतिहासिक दर्द से अभिभूत है। उन्होंने ऐतिहासिक दर्द को आम मानव की पीड़ा के माध्यम से व्यक्त किया है। कवि अपनी पीड़ा को ऐतिहासिक पीड़ा का रूप देता हुआ कहता है -

कोई जिया नही
पकी हुई फसलों की मृत्यु
सारे इतिहास रहे खेत,
अंगुली के पोरों के नीचे तड़पा किये
ऐंठती अंतड़ियों से -
भरे हुए पेट :
एक भी हथेली नहीं ऐसी है
क्रास भरे चेहरों ने
जिस पर उड़ेला नहीं
सागर की बूँद-बूँद देह?
वज्रपात ! हिमपात !![47]

धूमिल ने अपनी कविताओं के माध्यम से इतिहास-बोध को जन सामान्य से जोड़ने का सफल प्रयत्न किया है। वे समाज के तथाकथित शिक्षित, समझदार और साहसिकता के अन्तर को अपनी कविताओं के माध्यम से स्पष्ट करने का प्रयास करते हैं। धूमिल अपने इतिहास बोध के माध्यम से जनसामान्य को जोड़ना चाहते हैं। इसीलिए उनका कथ्य एकांगी होते हुए भी सर्वांगी हो जाता है और इतिहास को खंगालने की उन्हें आवश्यकता भी नजर आने लगती है। जब भी कवि समष्टि की चर्चा करेगा इतिहास को उसे आत्मसात अवश्य करना पड़ेगा। कवि कहता है -

लेकिन कविता चमड़ा नहीं है
इसीलिये कविता में गाती है घास
आदमी की जुबान से तिनका भर आगे बढ़कर
सदियों से अपने रौंदे जाने का इतिहास

'सहना ही जीवन है जीवन का जीवन से द्वन्द्व है
मेरी हरियाली में मिट्टी की करुणा का छन्द है'
और यही कारण है कि दल-बदल करते उतावले
बादलों को चाबुक से पीटकर
जीवन रस गारती है। दौड़-दौड़ सारे आकाश में
बिजली -
सदियों से रौंदी हुई घास को पुकारती है
इसलिये कविता में मामूली (पनरोपना)
डिब्बा गुर्राता है झुग्गी के छेद से
टपकता है तो टपक
लेकिन बिजुरी की अंगुली पकड़
कथरी पर सोये हुए मुन्ने पर मत लपक।
और कवि इन्ही छोटे-छोटे ब्यौरों को गाता है
उसकी यही साख है।[48]

धूमिल का सम्पूर्ण साहित्य ऐतिहासिक प्रतिबद्धता का है। उनके तीनों संग्रहों में अनेक कविताएँ ऐसी देखने को मिलती हैं जो इतिहास के दम पर आधुनिक समाज को जीवन्त बना देती है। धूमिल अपने अतीत से पीछे नही हटते, न ही वे इतिहास को नकारने में विश्वास करते हैं, लेकिन रूढ़िगत परम्पराओं को, मान्यताओं को ज्यों का त्यों स्वीकार कर लेना भी उन्हें स्वीकार नहीं है। शायद इसीलिए उनके साहित्य के इतिहास-बोध में भी आक्रोश नजर आने लगता है। 'मैं हूँ', 'हत्यारी सम्भावनाओं के नीचे', 'प्रजातंत्र के विरूद्ध', 'नक्सलबाड़ी', 'आज', 'मै लड़ रहा हूँ', 'शान्ति पाठ', 'जवाहर लाल की मृत्यु पर', 'पटकथा' जैसी अनेक कविताएँ ऐसी हैं जो इतिहास के दम पर आधुनिक सन्दर्भ को मजबूती से सामने रखती हैं। धूमिल अतीत के माध्यम से आधुनिक सन्दर्भ को रेखांकित करते हुए कहते हैं -

बीस साल बाद
मैं अपने-आपसे एक सवाल करता हूँ
जानवर बनने के लिए कितने सब्र की जरूरत होती है?
और बिना किसी उत्तर के चुपचाप
आगे बढ़ जाता हूँ
क्योंकि आजकल मौसम का मिजाज यूँ है
कि खून में उड़ने वाली पत्तियों का पीछा करना
लगभग बेमानी है।[49]

कवि समाज का ही नही स्वयं का भी आत्म चिन्तन करता है और लोगों को आत्मान्वेषी होने के लिए प्रेरित करता है। क्योंकि किसी अच्छे समाज का निर्माण तभी संभव है जब व्यक्ति, समाज और स्वयं कवि चिन्तन को आधार बनायेगा। आज हर व्यक्ति अर्न्तद्वन्द्वात्मकता से घिरा है। ऐसे में विकास कैसे सम्भव है? स्वयं से संघर्षशील मानव की ओर इशारा करता हुआ कवि कहता है -

ओ संघर्ष की मुद्रा में
घायल पुंसत्व ! तुमको मैं क्या दूँ?
अपनी उपलब्धियों में शंकालु
तुमको मैं क्या दूँ।[50]

धूमिल जहाँ एक ओर आत्मचिन्तन के माध्यम से विकास की बात करते हैं वहीं दूसरी ओर देश के लोगों को कायरता से निकालकर शत्रु से लड़ने की बात करते हैं। सारा देश जाग्रत हो उठता है और एक अद्भुत साहस का परिचय देता है। लोगों के इस साहस को धूमिल जीने की उद्दाम ललक कहते हैं -

इस देश की परम्परा की -
एक बेमिसाल कड़ी थी
लेकिन इसे साहस मत कहो।
दरअस्ल यह पुठ्ठों तक चोट खायी हुई
गाय की घृणा थी
(जिन्दा रहने की पुरजोर कोशिश)
जो उस आदमखोर से
बड़ी थी।[51]

इस युद्ध में भारत विजय तो प्राप्त कर लेता है उसके बाद ऐतिहासिक ट्रेजडियाँ भी सामने आती हैं। कवि इन विडम्बनाओं पर दृष्टि डालता है और उसके द्वारा समाज पर पड़ने वाले प्रभावों की भी समीक्षा करता है। भारत बाह्य युद्ध तो जीत गया लेकिन आन्तरिक युद्ध हारता रहा। हमारे बुद्धिजीवियों के द्वन्द्व में दुनिया के सामने भारत की सच्चाई लाकर उस समय खड़ी कर दी जब ताशकन्द समझौते पर निकले हमारे शान्ति पुरूष की मृत्यु हो जाती है -

मगर उसके तुरन्त बाद
मुझे झेलनी पड़ी थी सबसे बड़ी ट्रेजडी
अपने इतिहास की
जब दुनिया के स्याह और सफेद चेहरों ने
विस्मय से देखा कि ताशकन्द में

समझौते की सफेद चादर के नीचे
एक शान्ति यात्री की लाश थी
और अब यह किसी पौराणिक कथा के
उपसंहार की तरह है कि इस देश में
जहाँ मेरे पड़ोसी ने मात
खायी थी।[52]

धूमिल के साहित्य में इतिहास-बोध एक नवीन भावबोध के रूप में सामने आया है। उनका मानना है कि इतिहास मानवीय मूल्यों के विस्तार का रूप है। व्यक्ति इतिहास से ही सबकुछ ग्रहण करता है और आगे लोगों के सम्मुख प्रस्तुत कर देता है। यह एक गतिशील प्रक्रिया है जिसे हर किसी को स्वीकारना ही पड़ता है। आज जो घटित हुआ वह कल का सृजन करेगा। धूमिल ने अपने साहित्य के माध्यम से इतिहास को व्यापक दृष्टि दी है। उन्होंने इसे सभ्यता, संस्कृति, देश-प्रेम और निरन्तर विकास माना है। वह अपने साहित्य के माध्यम से जनता को जाग्रत करना चाहते हैं लेकिन उनका विशेष ध्यान युवाओं पर ही है क्योंकि सामाजिक परिवर्तन तभी सम्भव है जब युवा जागरुक होगा -

अक्सर उठाते हैं सवाल
कहाँ है युवा-जन?
परिवर्तन के अग्निचक्र?
क्षुधित इतिहास?[53]

धूमिल ने अपने काव्य में अतीत के साथ वर्तमान को जोड़ने का जो प्रयास किया है वह बेजोड़ है। धूमिल इस सत्य से कहीं भी मुकरते नजर नहीं आते की परम्पराएँ, मान्यताएँ मिथ्या हैं। हाँ यह जरूर है कि वे रूढ़ियों को तोड़ने में विश्वास जरूर करते हैं।

धूमिल के काव्य में व्यंग्य

अंग्रेजी के सटायर (Satire) शब्द का हिन्दी रूपान्तरण व्यंग्य है। पाश्चात्य विद्वानों ने व्यंग्य के उचित प्रयोग पर विशेष बल दिया है। डॉ0 कामिल बुल्के ने इस शब्द के कई नाम दिये हैं - व्यंग्य रचना, विद्रूप, प्रहसन, उपहास आदि।[54] पाश्चात्य एवं भारतीय विद्वानों ने इस शब्द की परिभाषा अपने-अपने ढंग से की है। अधिकतर ने तो इसे हास्य का दूसरा रूप ही मान लिया है। 'व्यंग्य' शब्द का प्रयोग मुख्य रूप से शक्तियों के अंतर्गत ही हुआ है। शब्द में अर्थ-द्योतन का जो गुण है उसको वृत्ति या शक्ति कहा गया है।[55] व्यंग्य को साहित्यकारों ने सामाजिक विकृतियों-विडंबनाओं

को उद्घाटित करने का सशक्त माध्यम माना। मूलतः व्यंग्य एक मनोवृत्ति है जिसके मूल में विरोध भाव निहित होता है। 'व्यंग्य' प्राचीन भारतीय वाङ्मय से आज तक साहित्य में प्रयोग हो रहा है। कभी मधुर व्यंग्य के रूप में तो कभी विषाक्त व्यंग्य के सन्दर्भ में। इसीलिए 'व्यंग्य' की परिभाषा भी विद्वानों ने अपने-अपने ढंग से दी है। डॉ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में ''व्यंग्य वह है जहाँ कहने वाला अधरोष्ठ में हंस रहा हो और सुनने वाला तिलमिला उठा हो और फिर भी कहने वालो को जबाब देना अपने को और भी उपहासास्पद बना लेना हो जाता है।''[56] डॉ0 राम कुमार वर्मा के अनुसार "आक्रमण करने की स्थिति को विकृत करके उससे हास्य उत्पन्न करना ही व्यंग्य है।"[57] हिन्दी के सशक्त व्यंग्यकार हरिशंकर परसाई का कथन है "व्यंग्य जीवन से साक्षात्कार कराता है, जीवन की आलोचना करता है, विसंगति, मिथ्याचारों और पाखंडों का पर्दाफाश करता है। अच्छा व्यंग्य साहानुभूति का सबसे उत्कृष्ट रूप होता है।"[58] हिन्दी कविता में व्यंग्य विषय पर शोध करने वाले डॉ0 शेरजंग गर्ग का मानना है कि व्यंग्य एक ऐसी साहित्यिक अभिव्यक्ति या रचना है जिसमें व्यक्ति तथा समाज की कमजोरियों, दुर्बलताओं, कथनी और करनी के अन्तरों की समीक्षा अथवा निंदा, भाषा की टेढ़ी भंगिमा दे कर अथवा कभी-कभी पूर्णतः सपाट शब्दों में प्रहार करते हुए की जाती है। वह पूर्णतः अगंभीर होते हुए भी गंभीर हो सकती है, निर्दय लगते हुए दयालु हो सकती है, प्रहारात्मक होते हुए भी तटस्थ लग सकती है, मखौल लगते हुए बौद्धिक लग सकती है। अतिशयोक्ति और अतिरंजन देने के बावजूद पूर्णतः सत्य हो सकती है। व्यंग्य में आक्रमण की स्थिति अनिवार्य होती है।[59] भारतीय विद्वानों की तरह पाश्चात्य आलोचकों ने भी व्यंग्य को नैतिक तथा सामाजिक विंताओं का मूल माना है। जेम्स सदरलैण्ड के अनुसार "व्यंग्य के विभिन्न प्रेरक तत्व परिर्वतनशील हैं, किन्तु एक प्रेरक तत्व ऐसा भी है जो करीब-करीब स्थायी है। व्यंग्यकार सदैव ही ''क्या हो रहा है और क्या होना चाहिए के उत्तर के प्रति असाधारण रूप से संवेदनशील होता है।"[60] मैथ्यू हागर्थ के शब्दों में "व्यंग्य चेतावनी देता है कि मनुष्य खतरनाक जानवर है जिसमें मूर्खतापूर्ण कार्य करने की क्षमता है और यदि व्यंग्य द्वारा इस सत्य की अभिव्यक्ति कर दी जाती है तो बहुत पर्याप्त है। मनुष्य के गौरव का वर्णन कवियों का कार्य है।[61] भारतीय एवं पाश्चात्य समीक्षकों ने व्यंग्य की जो परिभाषाएँ दी हैं उनसे व्यंग्य के अधिक तत्व सामने आते हैं लेकिन उन सब में समकालीन कवियों में व्यंग्य का प्रमुख तत्व आक्रोश या आक्रामकता सर्वाधिक देखने को मिलती है।

हिन्दी साहित्य में व्यंग्य की परंपरा वैसे तो बहुत पुरानी है लेकिन सही अर्थों में व्यंग्य की शुरूआत भारतेन्दु युग (आधुनिक युग) से ही मानी जाती है। भारतेन्दु

युग में व्यंग्य अपने प्रयोजन के साथ सामने आया। खासतौर पर भारतेन्दु, प्रताप नारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट और वियोगी हरि के साहित्य में इसकी बहुलता है। इस युग से व्यंग्य भी साहित्य का एक अभिन्न अंग बन गया। द्विवेदी युग, छायावाद और प्रगतिशील, (प्रगतिवाद) प्रयोगवाद में कवि अपनी सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक पीड़ा को व्यंग्य के माध्यम से व्यक्त करते रहे। आधुनिक साहित्य में निराला की 'कुकुरमुत्ता' कविता पहली बार शीर्षक और शीर्षक वर्ग पर करारा व्यंग्य करती नजर आती है। भारत की स्वतंत्रता के कुछ वर्षों बाद व्यंग्य कवियों का एक हथियार बन गया क्योंकि समाज में विघटन, अनास्था, विसंगति, कुण्ठा, अलगाव, विद्रूपता, मूल्यहीनता, मोहभंग, अमानवीयता और छलावा समाज में तेजी से बढ़ने लगा। ऐसे में साहित्यकारों के पास व्यंग्य के अतिरिक्त कोई और रास्ता ही नहीं बचा। लेकिन समकालीन कवियों ने परम्परागत चले आ रहे व्यंग्य में और धार दी। उनके साहित्य में प्रयुक्त व्यंग्य किसी हास्य या प्रहसन का मोहताज नहीं रहा। इस युग के कवियों ने व्यंग्य के माध्यम से सीधे प्रहार करने का मन बना लिया। राजकमल चौधरी, धूमिल, सौमित्र मोहन जैसे कवियों ने अपनी कविताओं के माध्यम से सीधा प्रहार करना शुरु कर दिया।

समकालीन कवियों ने व्यंग्य को एक नई परिभाषा दी। पहले से चली आ रही हास्य-व्यंग्य परम्परा को अधिक धारदार बनाया। अब व्यंग्य का मतलब महज अप्रत्यक्ष प्रहार या उपहास नहीं रह गया बल्कि सीधे प्रहार करने की एक विधा बन गई। व्यंग्य की इस नई विधा को साहित्य में प्रतिष्ठित करने वाले सशक्त कवियों में धूमिल अग्रिम पंक्ति में हैं जिन्होंने अपने पहले संग्रह 'संसद से सड़क तक' के मुखपृष्ठ पर ही कविता पर चोट कर डाली और कहा "एक सही कविता/ पहले/ एक सार्थक व्यक्तव्य होती है।" उनकी कविताओं की समीक्षा करते समय आलोचकों एवं पढ़ते समय पाठकों के मस्तिष्क में ये पंक्तियाँ अवश्य चोट करती रहेंगी कि क्या कविता या कवि का दायित्व सभी कवि उठा रहे हैं या साहित्य का समाज से पलायन हो रहा है। ऐसे साहित्यकारों की कमी पाठकों-आलोचकों को खल रही है जो कविता के माध्यम से 'सार्थक बहस' का हिस्सा बनते रहे हैं।

व्यंग्य और धूमिल का साहित्य दोनों एक दूसरे के पूरक हैं इसका सबसे बड़ा प्रमाण स्वंय उनकी तीनों कृतियाँ - संसद से सड़क तक, 'कल सुनना मुझे', 'सुदामा पाँडे का प्रजातंत्र' के नाम से ही हैं जो व्यवस्था तथा लोकतंत्र पर व्यंग्य करती हुई नजर आ रही हैं। 'संसद से सड़क तक' उनकी पहली प्रकाशित कृति है जिसमें 'कविता', 'बीस साल बाद', 'अकाल-दर्शन', 'शान्ति-पाठ', 'मोचीराम', 'नक्सलबाड़ी', 'मुनासिब कार्रवाई' एवं पटकथा सामाजिक, राजनीतिक और साहित्यिक विडंबनाओं

का जीवन्त उदाहरण प्रस्तुत करती हैं। कविता अपना रास्ता भटक गई है या उसे सच बोलने से भय लगने लगा है। उसमें अब वह भावुकता नहीं बची है जिसने कभी जन-मानस के हृदय अपनी पैठ बना रखी थी। आज कविता लोगों के हाथ की कठपुतली बन चुकी है, सच से दूर और बुद्धि के अधीन हो चुकी है। धूमिल के शब्दों में –

उसे मालूम है कि शब्दों के पीछे
कितने चेहरे नंगे हो चुके हैं
और हत्या अब लोगों की रुचि नहीं –
आदत बन चुकी है
वह किसी गँवार आदमी की ऊब से
पैदा हुई थी और
एक पढ़े-लिखे आदमी के साथ
शहर में चली गयी।[62]

कविता का गँवार के हाथ से शहर जाने का जो दर्द धूमिल को है उसमें पूरी सच्चाई है। आज कवि जो सच्चे अर्थों में कविता का सृजन करना चाहता है वह चंद बुद्धिजीवियों के काकस में फँसकर दम तोड़ रहा है। कवि लाचार है कि वह देश के लिए कुछ भी नहीं कर पा रहा है। वह तो यह भी नहीं बता पा रहा है कि –

सन्त और सिपाही में
देश का सबसे बड़ा दुर्भाग्य कौन है ![63]

हाँ, वह अपने आप से सवाल जरूर पूछता है कि –

"क्या आजादी सिर्फ तीन थके हुए रंगों का नाम है
जिन्हे एक पहिया ढोता है
या इसका कोई खास मतलब होता है।"[64]

कौन दे इसका उत्तर? अनेक पंचवर्षीय योजनाएँ गुजर गई लेकिन उत्तर नहीं मिला। देश आजाद हो गया लेकिन फायदा? क्या सिर्फ कागज पर देश का नक्शा और भविष्य आदमी बदलता रहता है। न कोई सार्थक व्यक्तव्य है न संविधान। असंगत समाज, देश और व्यक्ति सभी हो चुके हैं।

सन्दर्भ

1. 'धूमिल का कविता संसार' और पटकथा की भूमिका – डॉ. अतुलवीर अरोड़ा पत्रिका।
2. परिशोध पंजाब विश्वविद्यालय 23वाँ अंक

3. कल सुनना मुझे-धूमिल, पृ. 17
4. समकालीन कविता - सं. राधेश्याम बंन्धु पृ. 52
5. संसद से सड़क तक - धूमिल, पृ. 13
6. कल सुनना मुझे धूमिल, पृ. 24
7. तार सप्तक, द्वितीय संस्करण - अज्ञेय, पृ. 309
8. संसद से सड़क तक-धूमिल, पृ. 104
9. वही, पृ. 16
10. वही, पृ. 126
11. वही, पृ. 11
12. सुदामा पाण्डे का प्रजातंत्र - धूमिल, पृ. 21
13. वही पृ. 25
14. कल सुनना मुझे - धूमिल, पृ. 27
15. वही, पृष्ठ 27-28
16. वही, पृ. 80
17. संसद से सड़क तक - धूमिल, पृ. 125
18. कल सुनना मुझे, धूमिल, पृ. 42
19. सुदामा पाँड़े का प्रजातंत्र-धूमिल, पृ. 54
20. संसद से सड़क तक-धूमिल, पृ. 126
21. वही पृ. 127,
22. वही, पृ. 105
23. वही पृ. 105
24. वही पृ. 10
25. सुदामा पाँड़े का प्रजातंत्र-धूमिल, पृ. 27
26. वही, पृ. 35-36
27. `In our senise] The term 'Modern' is a chronological clarijication which can be applied. Legitimately enough to the writing of any post of the present or recent past Edward Rosen heim what happens in Litrature
28. आधुनिकता बोध-रामधारी सिंह दिनकर पृ. 20, 73
29. समकालीन कविता-सं. राधेश्याम बन्धु पृ. 71
30. नयी कविता में युगबोध-डॉ. मंजू दुबे पृ. 113-114
31. साठोत्तरी हिन्दी कविता की वस्तु योजना- डॉ. बादाम सिंह रावत, पृ. 47
32. संसद से सड़क तक - धूमिल, पृ. 7
33. धूमिल काव्य यात्रा - डॉ. मंजू अग्रवाल पृ. 101

34. कल सुनना मुझे - धूमिल, पृ. 33
35. संसद से सड़क तक - धूमिल, पृ. 110
36. साठोत्तरी हिन्दी कविता की प्रवृत्तियाँ-डॉ. रामकली सराफ, पृ. 38
37. कल सुनना मुझे - धूमिल, पृ. 69
38. वही, पृ. 68-69
39. सुदामा पॉण्डे का प्रजातंत्र - धूमिल, पृ. 21
40. वही, पृ. 21
41. संसद से सड़क तक - धूमिल, पृ. 31
42. समकालीन बोध और धूमिल का काव्य - डॉ0 कुसुम चन्द्र राजपाल, पृ. 165
43. साहित्य और इतिहास दृष्टि - डॉ. मैनेजर पाण्डेय : पृ. 39
44. संसद से सड़क तक-धूमिल, पृ. 102
45. कला सुनना मुझे-धूमिल, पृ. 26
46. संसद से सड़क तक - धूमिल, पृ. 121
47. कला सुनना मुझे- धूमिल, पृ. 71
48. वही पृ. 43-44
49. संसद से सड़क तक-धूमिल, पृ. 9
50. वही, पृ. 98
51. संसद से सड़क तक-धूमिल, पृ. 107
52. वही पृ. 107-108
53. कला सुनना मुझे-धूमिल, पृ. 69
54. अंग्रेजी शब्द कोश - कामिल वुल्के
55. छायावादोत्तर कविता में समाज-समीक्षा-अनिल राकेशी, पृ. 32
56. कबीर-हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ. 164
57. रिमझिम एकांकी संग्रह की भूमिका- डॉ0 रामकुमार वर्मा, पृ0 11
58. सदांचार का ताबीज-हरिशंकर परसाई, पृ0 9-10
59. स्वातन्त्रयोत्तर हिन्दी कविता में व्यंग्य-शेरजंग गर्ग, पृ0 27-28
60. इंग्लिश सेटायर, जेम्स सदर लैण्ड, पृ0 4
61. सेरायर-मैथ्यू हागर्थ, पृ0 07
62. संसद से सड़क तक-धूमिल, पृ0 7
63. वही, पृ. 10
64. वही, पृ. 10

पंचम अध्याय

धूमिल का काव्य शिल्प

काव्य मानव हृदय का सहजोद्रेक है और अनुभूतियों की शब्दमयी अभिव्यक्ति। कवि हृदय की अनुभूतियों को शिल्प में पिरोकर व्यक्त करता है। इसलिए भाषा जहाँ एक ओर भावावेगों के संप्रेषण का माध्यम है। वहीं दूसरी ओर अभिव्यक्ति की व्यंजक इकाई। काव्य शब्द और अर्थ की संहिति है।[1] पंडित जगन्नाथ ने अर्थ की रमणीयता के प्रतिपादक शब्द को काव्य कहा है।[2] पाश्चात्य समीक्षक आई.ए. रिचर्ड्स ने भाषा के संवेगात्मक प्रयोग को 'काव्य' कहा है।[3]

निश्चय ही भाषा काव्य का प्रमुख उपादान है। यह भावों की संवाहिका है। समर्थ भावों के अभाव में कवि के भाव जन-मानस तक नहीं पहुँच पाते हैं। डॉ0 प्रभाकर शुक्ल के शब्दों में यह सर्वथा सत्य है कि कविता का भाव हृदय में उत्पन्न होता है किन्तु अद्भुत् भाव-कल्पना या विचार को सुन्दर शब्दों में व्यक्त कर देना ही कला का कर्म है। कविता की प्रभविष्णुता के लिए जिस प्रकार सुन्दर भाव आवश्यक है उसी प्रकार सुन्दर भाषा भी।[4] काव्य भाषा सामान्य भाषा से भिन्न होती है, उसमें लयात्मकता, विम्बधर्मिता के साथ-साथ अर्थ की अनेक छवियों को उद्घाटित करने की क्षमता होती है। इसलिए कवि को भाषा ग्रहण करते समय इस पर विशेष चिन्तन की आवश्कता होती है कि वह साहित्य का सृजन किसके लिए कर रहा है। भाषा उसी के अनुरूप होनी चाहिए। अधिक पंडिताऊपन कवि को सच्चे अर्थों में जन मानस से अलग कर देता है। संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान होते हुए भी तुलसी, कबीर, निराला जैसे कवियों ने लोक जीवन की भाषा को चुनकर उदाहरण प्रस्तुत किया है।

अनुभूति और संरचना के भाषिक रूपान्तरण के स्तर पर निराला और नागार्जुन के बाद निर्विवाद रूप से सुदामा पाण्डेय 'धूमिल' का नाम लिया जा सकता है। उनके काव्य में ऐन्द्रिक अनुभूति को यथावत रखने वाले बिम्ब और सुपरिचित किन्तु मौलिक प्रतीक देखने को मिलते हैं। धूमिल ने भाषा को इस प्रकार मांजा है कि विशिष्टि अनुभूति अपने अनुरूप अभिव्यक्ति लेकर प्रस्तुत होती है। उनकी भाषा में एक ओर क्लिष्टता है तो दूसरी ओर लोक जीवन की शब्दावली है। सर्वहारा वर्ग के दुःख दर्द को अपने काव्य का कथ्य बनाने वाले धूमिल उन्हीं की भाषा में उनकी लड़ाई लड़ते नजर आते हैं। धूमिल की भाषा विषय एवं भाव से जुड़ी है। भाव की कीमत चुकाकर भाषा को सजाने-संवारने का काम धूमिल ने नहीं किया है। उनके विषय इतने स्पष्ट और मर्मस्पर्शी हैं कि भाषा स्वतः ही उनकी साया बन गई है।

आधुनिक हिन्दी काव्य-भाषा को सर्वाधिक संचरणशीलता, गतिमत्ता, त्वरा, ऊर्जा और उर्वरता देने वाले कवियों में धूमिल अग्रणी हैं। उन्होंने छायावाद, प्रगतिवाद, और प्रयोगवाद से आगें निकलते हुए भाषा को एक नया रूप दिया है। धूमिल ने ही सबसे पहले इस बात पर गहन चिन्तन किया है कि कविता को भाषाहीन करना है। अर्थात् उचित भाषा की तलाश में कवि अपनी बात को पूरी तरह से खुलकर नहीं कर पाता। कविता को फ्रेम में फिट करते-करते कवि के भावों की धज्जियाँ उड़ जाती हैं। धूमिल जिस दौर से गुजर रहे थे उसमें सबसे बड़ी समस्या भाषा ही थी क्योंकि काव्य-भाषा, बिम्बों, प्रतीकों के जाल में उलझी हुई थी। जन सामान्य का नाता उससे टूट चुका था। अस्पष्टता और दुरूहता कविता की खूबी और खामीं बन चुकी थी। धूमिल ने काव्य-भाषा को इस अभिजात्य की दलदल से निकालते हुए स्पष्ट रेखा खींचीं और कहा -

छायावाद के कवि शब्दों को तोल कर रखते थे,
प्रयोगवाद के कवि शब्दों को टटोल कर रखते थे,
नई कविता के कवि शब्दों को गोल कर रखते थे।
सन् साठ के बाद के कवि शब्दों को खोल कर रखते थे।[5]

काव्य भाषा के इस बंटवारे का असर उनकी कविताओं में स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। 'संसद से सड़क तक' की पहली कविता में ही वे कविता की बिम्बों एवं सूक्ष्म प्रतीकों से लदी हुई भाषा को नकार देते हैं। वे कहते हैं -

''नहीं-अब वहाँ कोई अर्थ खोजना व्यर्थ है
पेशेवर भाषा के तस्कर-संकेतों
और वैलमुन्ती इमारतों में
अर्थ खोजना व्यर्थ है।''[6]

धूमिल जिस 'पेशेवर भाषा की बात कर रहे हैं वो दरअसल नयी कविता के कुछ विशेष कवियों की भाषिक चिन्ता की ओर इशारा है। नई कविता के कवि भाषा के जंगल में इस तरह घिर गये हैं कि उनकी कविता जनमानस से अपनी पहचान खो बैठी है। नई कविता की इस कलात्मक बाजीगरी भाषा और जीवन से कटी हुई भाषा को धूमिल ने एक सिरे से खारिज कर दिया। उन्हें एक ऐसी काव्य भाषा की तलाश थी जो युगीन यथार्थ को वास्तविक आकार दे सके। काव्य भाषा के नाम पर जनमानस और कथ्य के बीच जो दीवार खड़ी की जा रही है, धूमिल उसे तोड़ना चाहते हैं जिससे कवि और पाठक के बीच में कोई दूरी न रह सके। इसीलिए कविता को 'भाषाहीन' करने की बात वे करते हैं। इसके लिए उन्हें 'कटघरे का कवि' 'भदेस'

का कवि भी कहा गया लेकिन धूमिल इससे विचलित नहीं हुए बल्कि स्वयं स्वीकार किया –

अन्त में कहूँगा –
सिर्फ इतना कहूँगा –
हाँ, हाँ, मैं कवि हूँ
कवि याने भाषा में
भदेस हूँ;
इस तरह कायर हूँ
कि उत्तर प्रदेश हूँ ![7]

अज्ञेय, मुक्तिबोध और धूमिल की भाषा में काफी अन्तर देखने को मिलता है। अज्ञेय की काव्यभाषा में तत्सम शब्दों की प्रधानता है, मुक्तिबोध की काव्य भाषा विम्बधर्मिता के कारण बौद्धिकता की लपेट में आ गई है जबकि धूमिल की भाषा सपाट और बेबाक है।

धूमिल अपनी कविता में तत्समीकरण करते हैं, पर तद्भव शब्दों के बीच-बीच में। धूमिल का काव्य प्रयोजन कविता को जन-जन तक पहुँचाना है जबकि अज्ञेय तथा मुक्तिबोध की कविता, काव्य-सहृदय या बौद्धिकों तक ही सीमित है। धूमिल की काव्य-भाषा में शब्द नाप-तोल कर नहीं रखे गये हैं। वे भाषा के स्वाभाविक प्रवाह के रूप में आये हैं जिसमें कृत्रिमता नहीं है। भाषा की इस स्वाभाविकता-यथार्थवादिता के कारण उनका काव्य कहीं-कहीं भदेस की सीमा तक पहुँच गया है। धूमिल की भाषा में कही भी पाठक को असहजता दृष्टिगत नहीं होती–

उसे मालूम है कि शब्दों के पीछे
कितने चेहरे नंगे हो चुके हैं
और हत्या अब लोगों की रुचि नहीं
आदत बन चुकी है
वह किसी गँवार आदमी की ऊब से
पैदा हुई थी और
एक पढ़े लिखे आदमी के साथ
शहर में चली गई।[8]

शब्द भंडार

भाषा की समृद्धि एवं सामर्थ्य उसके शब्द भंडार पर ही निर्भर होता है। शब्द भाषा के प्रमुख अवयव और उसकी सर्जना शक्ति के द्योतक है। सफल कवि की

कृतियों में शब्द-सम्पदा की विविधता लक्षित होती है। प्रत्येक भाव या व्यापार वर्णन के लिए कवि को शब्द चयन में अत्यन्त सजग और सतर्क रहना पड़ता है। शब्द योजना भाव को स्वयं प्रभावशाली बना देती है।[9]

धूमिल का शब्द भंडार व्यापक है। उन्होंने तत्सम, तद्भव, देशज, विदेशी एवं नये प्रयोग अपनी कविताओं भरपूर में किये हैं। धूमिल की कविता की सबसे बड़ी विशेषता है कि उन्होंने शब्दों को गढ़ने का प्रयास नहीं किया है अपितु शब्द स्वतः आ गये हैं। उनकी भाषा में प्रयुक्त शब्दावली का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है-

1. तत्सम शब्द
2. तद्भव शब्द
3. देशज शब्द
4. विदेशी भाषाओं के शब्द
5. समानार्थी शब्द
6. पुनरुक्त शब्द
7. अश्लील एवं अशोभनीय शब्द

1. संस्कृत तत्सम शब्द

धूमिल की कविताओं में संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग हुआ है, लेकिन उन्होंने प्रचलित एवं सरल शब्दों का ही प्रयोग अधिक किया है जिससे आम पाठक से उनकी कविता दूर न जाये। उन्होंने ऐसे तत्सम शब्दों का प्रयोग किया है जो भाषा के साथ घुल-मिल गये हैं और अन्य शब्दों से पृथक नहीं लगते। उनकी रचनाओं में प्रयुक्त कुछ तत्सम शब्द उदाहरणार्थ प्रस्तुत हैं –

निर्जन	पवित्रता	शेष
एकालाप	शरदकालीन	आभा
दुर्घटना	स्वास्तिक	शालीनता
तस्कर	ध्वस्त	सभ्यता
सूर्योदय	गोधूलि	युद्ध प्रेक्षकों
भुजाओं	आलोकित	निहत्था
मातृभाषा	आहुतियाँ	कवच
निरर्थक	चीत्कार	रसोईघर

इतिहास	विवर्णमुख	भूगोल
वनस्पति	मस्तिष्क	जम्बूद्वीप
दिनचर्या	प्रज्वलित	अन्तरंग संस्कार
घृणा	आह्लादित	सूर्यास्त
बसन्त	हिमपात	विदूषक
अबोध	निश्चल	पर्यटक
ध्वनियों	निष्पाप	प्रजातंत्र
नमस्कार	शिशिर	उद्घाटन
तिरस्कार	अण्डकोश	समारोह
उद्दण्डता	मुस्कान	विषधर
कोकशास्त्र	आहिस्ता	
अस्तित्व	केशों	

2. तद्भव शब्द

धूमिल के काव्य में तद्भव शब्दों का प्रयोग अधिक हुआ है जिससे उन्होंनें अपनी काव्य भाषा को सरल एवं प्रवाहपूर्ण बनाने का प्रयास किया है। कतिपय शब्द द्रष्टव्य हैं –

दीवार	खोखला	झुग्गी
गोबर	गर्दनों	उबकाइयों
गलियों	पत्थर	कढ़ौती
धोता	महुँए	चौकी
पत्ती	कील	खुरपी
परछाई	बैलगाड़ियों	गिराव
महरी	झाड़ना	गाँव
पट्टी	किवाड़ों	सोहर
बातूनी	रूखापन	भुक्खड़

3. देशज शब्द

धूमिल का काव्य जन चेतना का काव्य है इसलिए शब्दों का चयन उन्होंने कविता को चमत्कारिक बनाने के लिए नहीं किया अपितु जो शब्द जहाँ सटीक बैठ गये उनका प्रयोग करने में उन्होंने संकोच नहीं किया। इसीलिए उनके काव्य में तत्सम,

तद्भव की तरह देशज शब्दों का भी प्रयोग हुआ है। कुछ शब्द उदाहरणार्थ प्रस्तुत हैं –

झुण्ड	चिलम
झुर्रियों	नेकर
टांगें	टट्टर
ढालानों	ढोकते
फूटी पतलियाँ	बनैले
गाँजे	

4. विदेशी भाषाओं के शब्द

धूमिल की काव्य भाषा में विदेशी–अरबी, फारसी, उर्दू और अँग्रेजी शब्दों का जमकर प्रयोग हुआ है। लेकिन जिन शब्दों का प्रयोग धूमिल ने अपनी कविताओं में किया है वे सहज और स्वाभाविक बन गये है। उदाहरणार्थ –

मकान	तलाश	पेशेवर
जुलूस	वक्त	काफी
नक्शे	शर्म	आजादी
फीतों	दराजों	शक
मुर्दा	फिरंगी	बेकारी
दरअस्ल	मुकाम	असलियत
नीयत	नफरत	मसौदे
जरायमपेशा	मक्कारी	न्यूयार्क
गोश्त	खुराक	युक्लिप्टस
दरख्त	रेलिंग	श्मशान
शहनाई	दिलफरेब	पिस्तौल
किडनी	टेपरिकार्डर	चकतियों
टेलीफोन	हिटलर	रोजी
शायर	रिहर्सल	शरीफ
वाजिब	ट्रैफिक	हलफनामा
बेशहूर	ऐक्सरे	ट्रेडमार्क
ऐटमबम	कब्र	रिटायर्ड
शोहरत	वाजिब	तजुर्बा
शाबाश	मशगूल	कुनबे

जहमत	ब्रेक	मदरसे
कबाब	लुक्मे	जुबान
कर्फ्यू	इजाजत	दहशत
रोजनामचा	बेमुरव्वत	

5. नये शब्द प्रयोग

धूमिल ने अपने काव्य में सौन्दर्य की वृद्धि के लिए नवनिर्मित शब्दों के प्रयोग भी यथा-कदा किये हैं यद्यपि इनकी संख्या अल्प है। फिर भी वे अर्थ-व्यंजना में पर्याप्त समर्थ हैं।

संसद से सड़क तक - वैलमुन्ती इमारत, (पृष्ठ-8) निरर्थ, (पृष्ठ-13) सट्टी, (पृष्ठ-15) ररों (पृष्ठ-29) नवैयत, (पृष्ठ-38)

सुदामा पाँड़े का प्रजातंत्र - कुकुरबू, (पृष्ठ-25) शेर छाप तकिये की बू, (पृष्ठ-26) हलफल हाँफती लालछौंही कूची में (पृष्ठ-43)

कल सुनना मुझे - टाँगों में अकड़ भरता है, (पृष्ठ-18) सही कवियों और तुक्कड़ों की, (पृष्ठ-42)

6. समनार्थी या पर्याय

संसद से सड़क तक - पढ़े-लिखे, (पृष्ठ-7) जलसो-जुलूसों, (पृष्ठ-16) छोटे-मोटे, (पृष्ठ-74) खाने-कमाने, (पृष्ठ-85) भूल-चूक, (पृष्ठ-94) नोंक झोंक, (पृष्ठ-103) आती-जाती, (पृष्ठ-105)

कल सुनना मुझे - ओस-कणों, (पृष्ठ-31) दल-बदल, (पृष्ठ-43) चुप-चाप, (पृष्ठ-50) आर-पार, (पृष्ठ-55) युवा-जन, (पृष्ठ-69)

7. पुनरुक्त शब्द

संसद से सड़क तक - जगह-जगह, (पृष्ठि-23) रह-रह, (पृष्ठ-23) बार-बार, (पृष्ठ-35) अलग-अलग, (पृष्ठ-38) अपनी-अपनी, (पृष्ठ-38) अपना-अपना, (पृष्ठ-42) टूटते-टूटते, (पृष्ठ-46) अपने-अपने, (पृष्ठ-47) हाँ-हाँ, (पृष्ठ-48) आहिस्ता-आहिस्ता, (पृष्ठ-51) देखते-देखते, (पृष्ठ-51) हे-हे-हे, (पृष्ठ-64) आखिरकार-आखिकार, (पृष्ठ-69) हुचुर-हुचुर, (पृष्ठ-95) साफ-साफ, (पृष्ठ-97) पोर-पोर, (पृष्ठ-96) नस-नस, (पृष्ठ-99) सुनता रहा-सुनता रहा, (पृष्ठ-101) इन्तजार करता रहा- इन्तजार करता रहा, (पृष्ठ-101) यह मेरा देश है-यह मेरा देश है, (पृष्ठ-104) ध्वस्त-ध्वस्त, (पृष्ठ-107)

कल सुनना मुझे - युग-युग, (पृष्ठ-07) दिग्विजय-दिग्विजय, (पृष्ठ-10) हाँ-हाँ, (पृष्ठ-19) जहाँ-जहाँ, (पृष्ठ-24) पीपू-पीपू, (पृष्ठ-34) करते-करते, (पृष्ठ-34) अभी-अभी, (पृष्ठ-38), दौड़-दौड़, (पृष्ठ-43) राम-राम, (पृष्ठ-43), छोटे-छोटे, (पृष्ठ-44), नेति-नेति, (पृष्ठ-49), रगड़-रगड़, (पृष्ठ-49), तोड़-तोड़, (पृष्ठ-53), बार-बार, (पृष्ठ-52), टूट-टूट, (पृष्ठ-54), अक्षर-अक्षर, (पृष्ठ-54), एक-एक (पृष्ठ-66), बूँद-बूँद, (पृष्ठ-71), गर्भपात-गर्भपात, (पृष्ठ-71), धीरे-धीरे, (पृष्ठ-74), शांति प्रिय-शांति प्रिय, (पृष्ठ-79)

सुदामा पाँड़े का प्रजातंत्र - जनतंत्र-जनतंत्र, (पृष्ठ-45), छितो-छितो, (पृष्ठ-50), डांग-डांग, (पृष्ठ-50)

8. अश्लील एवं अशोभनीय शब्द

संसद से सड़क तक - गर्भपात, (पृष्ठ-07), गर्भाधान, (पृष्ठ-07), गाभिन पेट, (पृष्ठ-12), नंगी, (पृष्ठ-12), जूजी, (पृष्ठ-18) मासिक धर्म, (पृष्ठ-13), मूतते, (पृष्ठ-21), टाँगें, (पृष्ठ-22), बलात्कार, (पृष्ठ-22), गर्म गदगद औरत, (पृष्ठ-24), गोश्त, (पृष्ठ-27), जाँघों, (पृष्ठ-30) हिजड़ों, (पृष्ठ-31) वेश्याओं, (पृष्ठ-34), गंजेड़िये, (पृष्ठ-34), बदचलन, (पृष्ठ-44), सण्डासघरों, (पृष्ठ-50), हरजाई, (पृष्ठ-59), सहवास, (पृष्ठ-60), जिस्म, (पृष्ठ-123),

कल सुनना मुझे - कामातुर, (पृष्ठ-13), नेकर के नीचे, (पृष्ठ-14), पत्नी को चूमना, (पृष्ठ-18), टाँगों, (पृष्ठ-19), नीच, (पृष्ठ-23), बाडिस, (पृष्ठ-24), हिजड़ों, वेश्याओं, लिंगबोध, (पृष्ठ-29), वीर्य, (पृष्ठ-49), गर्भपात, (पृष्ठ-71),

सुदामा पाँडे का प्रजातंत्र - मूत, (पृष्ठ-20), जाँघ, (पृष्ठ-21)

मुहावरे

मुहावरे भाषा को प्रांजल, प्रवाहपूर्ण एवं सशक्त बनाते हैं। कम शब्दों में बड़े अर्थ की प्रतीति करा देना इनकी विशेषता होती हैं। धूमिल के काव्य में भी स्थान-स्थान पर कुछ प्रयोग देखने को मिल जाते है। उदाहरणार्थ -

संसद से सड़क तक -

उसे मालूम है कि शब्दों के पीछे
कितने चेहरे नंगे हो चुके हैं, (पृष्ठ-7)
लेकिन यही वे भूलते हैं
दरअस्ल, पेड़ों पर बच्चे नही

हमारे अपराध फूलते हैं (पृष्ठ–16)

अंगुली रखने से मना करते हैं
जिनका आधे से ज्यादा शरीर
भेड़ियों ने खा लिया है (पृष्ठ–17)

गुजर जाना
जिसमें जिम्मेदारियाँ
आदमी का खोखला करती हैं (पृष्ठ–20)

मेरी शालीनता–मेरी जरूरत है
जो अक्सर मुझे नंगा कर गयी है (पृष्ठ–22)
अखबारों की सुर्ख़ियाँ मिटाकर दुनियाँ के नक्शे पर
अंधकार की एक नयी रेखा खींच रहा हूँ (पृष्ठ–24)

मेरा डर मुझे चर रहा है (पृष्ठ–24)

सुरमा लगा रहा हूँ (पृष्ठ–25)

जब हमारे भीतर तरबूज कट रहे हैं
मगर हमारे सिर तकियों पर
पत्थर हो गये हैं (पृष्ठ–28)

कबूतरों के पंख कतर रही है (पृष्ठ–30)

एक मतलबी आदमी जो अपनी जरूरतों में
निहायत खरा था (पृष्ठ–33)

अपनी–अपनी जगह एक ही किस्म से
अपना–अपना फ़र्ज अदा करते हैं (पृष्ठ–42)

कल सुनना मुझे

हे ईश्वर ! हमारे रिश्तों में बल दे
हमारी रीढ़ की हड्डी में बल दे
कंधों को थपथपा (पृष्ठ–9)

घूमने वाली बीमार रफ्तार
इस अस्पताल के सदर गेट पर
दस्तक देती है (पृष्ठ–11)

हर चीज साफ है –

अपने हैं आप तो
सौ खून माफ है (पृष्ठ-14)

बंजर और परती पर आजादी के कल्ले फूटतें हैं (पृष्ठ-24)

हक जैसे एक मामूली शब्द को
मोर्चे पर बहाल करती है (पृष्ठ-37)

बौने पद-चिन्हों से अंकित
उखड़े हुये मील के पत्थर
मोड़-मोड़ पर दीख रहे हैं (पृष्ठ-49)

मेरी जुबान चुप है
ओठों पर ताले हैं (पृष्ठ-70)

चौड़े चकले चेहरे को पार करती हुयी
सीवान में गुम हो जाती है (पृष्ठ-74)

सुदामा पाँड़े का प्रजातंत्र

लेकिन पहली बार
भाषा का पलड़ा भारी पड़ रहा है (पृष्ठ-30)

भाषा और हवा में एक नाटक चल रहा है (पृष्ठ-30)

महसूसती है कि हमारी रीढ़ पर
दाँत भेड़ियों के गड़े हैं (पृष्ठ-41)

और इस तरह
धुन्ना कविताओं
चुन्ना राजनीति
और मुन्ना विद्रोह को
ठेगा दिखाएँ (पृष्ठ-42)

एक दूसरे से अपना मुँह
चुराने लगे हैं (पृष्ठ-49)

मैमन सिंह की अँगुली में पड़ी आपकी
अँगूठी आप का मुँह चिढ़ा रही है (पृष्ठ-53)

कल तक वह युवामन
हर एक की आँख का तारा होना (पृष्ठ-71)

प्रिय शब्द

प्रत्येक कवि को कुछ शब्द विशेष प्रिय लगते हैं जिनका प्रयोग वह अपनी रचना में बार-बार करता है। धूमिल के भी कुछ प्रिय शब्द हैं जो उनकी कविताओं में किसी न किसी रूप में बार-बार प्रयोग होते हैं। उदाहरणार्थ -

संसद	झुर्रियाँ	क्रोध
कुर्सियाँ	लहू	श्रद्धा
भाषा	जाँघों	धुआँ
व्याकरण	नंगापन	कुहासा
सड़क	पसीना	दलदल
भूख	बदबू	दलाल
जुलूस	कवि	देशभक्त
नीयत	प्रजातंत्र	ऊब
अकाल	मतदान	पूँजीवादी
रोटी	चुनाव	तिजोरियें
प्रेमिका	हलफनामा	पशु
जूते	अदालत	हत्यारा
औरत	कटघरा	टोपियाँ
मृत्यु	संविधान	समाजवाद
श्मशान	नेता	दर्पण
हिजड़ों	नफरत	जंगल

धूमिल के काव्य में प्रयुक्त बिम्ब और प्रतीक

बिम्ब काव्यगत अभिव्यक्ति का माध्यम है जो भावों को मूर्त रूप देता है। वह वस्तु-तत्व और भाव जगत के मध्य सामंजस्य स्थापित करता है। बिम्ब के सहारे सहृदय की सौन्दर्य-चेतना प्रतिपाद्य विषय से तादात्मय स्थापित करती है। आधुनिक आलोचकों ने बिम्ब को काव्य मूल्यांकन के प्रतिमान रूप में स्वीकार किया है।

काव्य-कला के सन्दर्भ में 'बिम्ब' अंग्रेजी शब्द' इमेज' का पर्याय है। 'इमेज' का अर्थ है किसी पदार्थ या मनश्चित्र, मानसी प्रतिकृति या कल्पना। इसका शब्दार्थ है सूर्य, चन्द्रमण्डल, प्रतिच्छाया, प्रतिविम्ब अथवा प्रत्यंकित रूप चित्र।[10] सामान्य अर्थ में बिम्ब

किसी पदार्थ की प्रतिकृति है और वह उस वस्तु या पदार्थ को सजीवता एवं आकार भी प्रदान करता है। पाश्चात्य साहित्य में केवल कल्पना को ही प्रमुखता नहीं दी गई है बल्कि मूर्त चित्रण अर्थात् बिम्ब विधान पर बल दिया गया हैं। बिम्बवाद के प्रर्वतक टी0 ई0 ह्यूम ने विम्ब को कविता का प्राण माना है।[11] सी0डी0 लेविल के अनुसार - ''काव्य बिम्ब शब्द निर्मित चित्र है।[12]

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में ''बिम्ब ग्रहण वहीं होता है जहाँ कवि अपने सूक्ष्म निरीक्षण द्वारा वस्तुओं के अंग-प्रत्यंग, वर्ण-आकृति तथा उसके आस-पास की परिस्थिति का परस्पर संश्लिष्ट विवरण देता है।''[13]

डॉ0 केदार नाथ सिंह के शब्दों में ''बिम्ब वह शब्द चित्र है जो कल्पना के द्वारा ऐन्द्रिय-अनुभवों के आधार पर निर्मित होता है। काव्य के सन्दर्भ में बिम्ब एक ऐसा शब्द चित्र है जिसमें कवि की अनुभूति और कल्पना साकार होती हैं। कविता में अनुभूति और स्मृति एक तार में अनुस्यूत होकर बिम्ब द्वारा प्रकट होती है।''[14]

धूमिल के काव्य में बिम्बों का प्रयोग हुआ है लेकिन उनके समग्र बिम्ब समाज विरोधी, समकालीन, सामाजिक, राजनीतिक, नैतिक आदि की असफलता तथा व्यवहार के अनावरण और मूर्तिभंजन के बिम्ब हैं। धूमिल के समग्र काव्य में व्यवस्था की विकृति का त्रासद बिम्ब प्रस्तुत है। समसामयिक सामाजिक संरचना की अस्वीकृति और उसके टूटने के लिए कविता में, भूख और अपमान से तनी हुई मुट्ठी का अंश ही बिम्ब उभारता है। व्यवस्था के नग्नीकरण, व्यंग्य, विद्रूपताएं, धिक्कार, उपहास आदि से उत्पन्न बिम्बों की छटा धूमिल की कविताओं में मिलती हैं।

कवि मध्यमवर्गीय जनतंत्र, आशावादी राजनीति और व्यक्तिवादी विद्रोह को अपनी कविता में आत्मसात् करता है। सभ्यता, संस्कृति और उसके ढाँचे को चुनौती देती हुई धूमिल की कविता एक समग्र बिम्ब की तरफ संकेत करते हुए मन में एक भाव उत्पन्न करती है कि वह गलत नही गलीज भी है, क्योंकि उसमें अमानवीयता है। यथा -

''तो आओ एक निर्णय लें
हम दोनों मिलकर
अपने जानने और अपने नकारने का
एक संयुक्त मोर्चा बनाएँ
आज की भूख से भूख के अगले पड़ाव तक
लिख दें
यह रास्ता तनतंत्र को जाता है

और इस घुन्ना कविताओं
धुन्ना राजीनीति
और धुन्ना विद्रोह को ठेंगा दिखायें।"[15]

बिम्बों के प्रकार

बिम्ब विभाजन एवं उसकी संख्या के बारे में विद्वानों में मतभेद है। डॉ0 सुरेन्द्र माथुर ने बिम्ब को तीन वर्गो में विभक्त किया है – रूप बिम्ब, भाव बिम्ब और क्रिया बिम्ब।[16] डॉ0 सुधा श्रीवास्तव ने उसे चार भागों में विभाजित किया है- ऐन्द्रिक बिम्ब वस्तुपरक बिम्ब, भाव बिम्ब तथा दार्शनिक विम्ब।[17] डॉ0 नगेन्द्र ने उसे पाँच भाँगों में विभक्त किया है – ऐन्द्रिक आधार पर, सर्जक कल्पना के आधार पर, प्रेरक अनुभूतियों के आधार पर, अनुभूति के आधार पर और काव्य दृष्टि के आधार पर।[18] डॉ. सुधा श्रीवास्तव के शब्दों में ऐन्द्रिय बिम्ब हमारी संवेदना को जगाते है। जो ऐन्द्रिक बिम्ब जितना ही सशक्त होता है वह पाठक की ऐन्द्रियानुभूति को उतना ही जागृत करता है।[19] इन्द्रियबोध के आधार पर बिम्बों को पाँच भागो में विभाजित किया जा सकता है–चाक्षुष बिम्ब, श्रव्य बिम्ब, स्पर्श बिम्ब, घ्राणपरक बिम्ब और रसनापरक बिम्ब। इसके अतिरिक्त एकाध बिम्ब और काव्य में देखने को मिलते हैं जिन्हें संश्लिष्ट या मिश्रित बिम्ब कह सकते हैं।

धूमिल के काव्य में यदाकदा सभी बिम्ब देखने को मिलते हैं लेकिन कवि ने अपनी कविता बिम्बों, प्रतीकों को ध्यान में रखकर नहीं लिखी है। कुछ आलोचको का तो यहाँ तक मानना है कि धूमिल के काव्य में बिम्बों का प्रयोग हुआ ही नहीं है, पर ऐसा कहना सर्वथा अनुचित है। धूमिल की कविताओं में जो भी बिम्ब आये हैं वे समान्य अर्थ में हैं। उन्होंने कविता बिम्ब को ध्यान में रखकर नहीं लिखी है। उनके काव्य में प्रयुक्त कुछ बिम्बों के उदाहरण द्रष्टव्य हैं –

ऐन्द्रिय बिम्ब

बिम्बों के सभी प्रकार में ऐन्द्रियता (शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध) अवश्य रहती है। आई0ए0 रिचर्ड्स ने बिम्ब के मानसिक घटनात्मक चरित्र तथा उससे ऐन्द्रिय संवेदना (शब्द, रूप आदि) के विचित्र सम्बन्ध को लक्ष्य किया है।[20]

धूमिल के काव्य में ऐन्द्रिय संवेदना के आधार पर बिम्बों को विभाजित किया जा सकता है। उनकी कविता में दृक – बिम्बों की अनवरत श्रृंखला है, अन्य इन्द्रियों पर आधारित बिम्ब अल्प हैं चाक्षुष और ऐन्द्रिय भाव के बिम्ब मिश्रित हैं।

रस बिम्ब

रस बिम्ब से तात्पर्य रसना से है। रस बिम्ब को आस्वाद्य बिम्ब भी कहा जाता है। रसना से विभिन्न पदार्थों के स्वाद का ज्ञान होता है। इसीलिए इसे आस्वाद्य बिम्ब भी कहते हैं। धूमिल के काव्य में रस-बिम्बों की संख्या अधिक नहीं मिलती। कतिपय उदाहरण द्रष्टव्य हैं –

मेरे आस-पास
एक अजीब-सा स्वाद-भरा रूखापन है
उधार देने वाले बनिये के
नमस्कार की तरह[21]

और तुम्हारी ऊब के लिए
वैष्णव जण तो तेणे कहिये की
नमकीन धुन[22]

गन्ध बिम्ब

डॉ0 नगेन्द्र के अनुसार "विश्व के काव्य में ऐसे उदाहरण एकत्र करना कठिन है जिनमें संश्लिष्ट घ्राण्य बिम्ब प्रस्तुत किये गये हो।[23] गंध बिम्ब अनुभूति का विषय है जो शब्दों के माध्यम से पाठक को प्रतीति करता है। धूमिल के काव्य में इसके अनेक उदाहरण देखने को मिलते है। कुछ द्रष्टव्य हैं-

लेकिन मुझे लगा कि एक विशाल दलदल के किनारे
बहुत बड़ा अधमरा पशु पड़ा हुआ है
उसकी नाभि में
एक सड़ा हुआ घाव है
जिससे लगातार - भयानक बदबूदार मवाद
बह रहा है[24]

उनकी सहानुभूति
तुम्हारे पसीने की बदबू से
मेल खाने लगी है।[25]

लेकिन हर बार वापस घर लौटकर
कमरे के अपने एकान्त में
जूते से निकाले गये पाँव-सा
महकता हूँ।[26]

इस वक्त जबकि कविता माँगती है
समूचा आदमी अपनी खुराक के लिए
उसके मुँह से खून की बू
आ रही है[27]

श्रव्य बिम्ब

श्रव्य बिम्ब का दूसरा नाम नाद बिम्ब भी है। ध्वनि, लय तुक आदि से सम्बन्धित व्यापारों से निर्मित बिम्ब इसके अन्तर्गत ग्रहण किये जाते हैं। धूमिल के काव्य में श्रव्य बिम्बों का प्रयोग मिलता है। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं :-

वह अपने लिए काफी सतर्क है
और जब जवान औरतों को देखता है
उसकी आँखों में कुत्ते भौंकते हैं[28]

घर में बीमार बच्चे का
'फटे हुए दूध-सा रोना' सुनता हूँ[29]

कन्धे पर लुढ़क रहा था,
किसी झनझनाते हुए चाकू की तरह[30]

और एक युग बीत गया है
थकी हुई घायल आहुतियाँ आज शून्य के बन्दीगृह में
सिसक उठी हैं[31]

समुद्र के पश्चिमी सिरे पर सूर्यास्त-
जब किसी प्रज्वलित घंटा-ध्वनि-सा
गूंज उठता है[32]

जब पेड़ किसी खोटे सिक्के-सा
उछलकर घाटी की गुमसुम हथेली पर
बेखनक गिरता है - एक तना
दूसरे तने को चाकू फेंकना सिखाता है[33]

फूलों की हँसी के खिलाफ
जंजीर खनखना रही है[34]

सदियों से रौंदी हुई घास को पुकारती है
इसीलिए कविता में मामूली (पनरोपना)
डिब्बा गुर्राता है झुग्गी के छेद से[35]

स्पृश्य बिम्ब

स्पृश्य बिम्ब का सम्बन्ध स्पर्श-जन्य संवेदनाओं से होता है जिसके मूल में त्वचा प्रधान होती है। किसी वस्तु की कोमलता अथवा कठोरता का ज्ञान त्वचा के माध्यम से होता है। त्वचा में वस्तु-विशेष के स्पर्श से जो स्पंदन उभरता है वही स्पृश्य बिम्ब का विषय होता है।

धूमिल के काव्य में स्पर्श बिम्ब के अनेक उदाहरण देखने को मिलते है। कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं -

वह उसके चुम्बन के साथ बारूद के जले हुए गोश्त का
एक सड़ा हुआ टुकड़ा जोड़ देता
और हवा टाँग देता उसके लिए[36]

क्या मैंने पेड़ की आत्मीयता की बात की
क्या मैंने कहा कि धूप माँ की गोद-सी गर्म थी
क्या मैंने कहा कि थर-थराती हुई जुबान
डबडबायी आँख में बदल गई थी[37]

एक ठंडी और गाँठदार अँगुली माथा टटोलती है।
सोच में डूबे हुए चेहरों और
वहाँ दरकी हुई जमीन में कोई फर्क नहीं है।[38]

स्वाद का पहला तजुर्बा था जुबान पर
एक गीली और कोमल गर्माहट थी
जो झिली पर रोशनी की तरह
बजती थी। वह
पहला रोना था पृथ्वी पर[39]

चाक्षुष् बिम्ब

ज्ञानेन्द्रियों में चक्षु का स्थान प्रमुख है। चाक्षुष् बिम्ब को दृश्य बिम्ब 'एवं रूप बिम्ब भी कहा जाता है। डॉ0 नगेन्द्र ने इसकी महत्ता को स्वीकारते हुए कहा है- ''इनका स्वरूप सबसे अधिक स्पष्ट होता है क्योंकि इसके आयाम अधिक मूर्त होते हैं। यही कारण है कि ऐसे अनुभव के लिए जिसमें किसी इन्द्रिय का सीधा सन्निकर्ष होता है प्रत्यक्ष विश्लेषण का भी प्रयोग किया जाता है। जीवन तथा काव्य में दृश्य बिम्बों का प्रयोग सर्वाधिक होता है।[40] धूमिल के काव्य में दृश्य बिम्ब का प्रयोग पर्याप्त देखने को मिलता है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत है -

क्या आजादी सिर्फ तीन थके हुए रंगों का नाम है जिन्हें
एक पहिया ढोता है
या इसका कोई खास मतलब होता है?[41]

पूरे आकाश को
दो हिस्सों में काटती हुई
एक गूँगी परछाई गुजरेगी
दीवारों पर लड़खड़ाते रहेंगे
हवाई हमलों से सुरक्षा के इश्तहार[42]

सड़क के पिछले हिस्से में
छाया रहेगा
पीला अन्धकार
शहर की समूची
पशुता के खिलाफ[43]

यह जानकर कि तुम्हारी मातृभाषा
उस महरी की तरह है, जो
महाजन के साथ रात भर
सोने के लिए
एक साड़ी पर राजी है
सिर कटे मुर्ग की तरह फड़कते हुए
जनतंत्र में[44]

तुम, चुपचाप, अपनी दिनचर्या का
पिछला दरवाजा खोलकर
बाहर आ जाओगे
जहाँ घास की नोक पर
थर-थराती हुई ओस की एक बूँद
झड़ पड़ने के लिए
तुम्हारी सहमति का इन्तजार
कर रही है।[45]

मेरी माँ का चेहरा
झुर्रियों की झोली बन गया है[46]

जहाँ वसन्त
दिमाग से निकले हुए पाषाणकालीन पत्थर की तरह
डाल से लटका हुआ है[47]

अखबारों की सुर्खियाँ मिटाकर दुनिया के नक्शे पर
अन्धकार की एक नयी रेखा खींच रहा हूँ
मैं अपने भविष्य के पठार पर आत्महीनता का दलदल
उलीच रहा हूँ।[48]

मैकमोहन रेखा एक मुर्दे की बगल में सो रही है
और मैं दुनिया के शान्ति-दूतों और जूतों को
परम्परा की पालिश से चमका रहा हूँ।[49]

घण्टाघर में वक्त की कैंची
कबूतरों के पंख कतर रही है
चौराहों पर[50]

बनैले पशुओं ने विश्राम किया था। कविता में
कुछ लोग मनुष्य की आत्मा और गाँजे की
चिलम पर अँगुलियों के निशान की शिनाख्त कर रहे हैं[51]

सफेद पालतू बिल्ली
अपने पंजों के नीचे से कुछ शब्द
काढ़कर रख देती है
अचानक सड़कें
इश्तहारों के रोजनामचों में बदल जाती हैं[52]

उसकी कविताओं में
बवासीर की गाँठ की तरह शब्द
लहू उगलते हैं[53]

अधजले शब्दों के ढेर में तुम
क्या तलाश रहे हो?
तुम्हारी आत्मीयता-
जले हुए कागज की वह तस्वीर है
जो छूते ही राख हो जायेगी।[54]

यह उस आदमी का भविष्य है जो अचानक,
टूटते-टूटते, इस तरह तन गया है

कि कल तक जो मवेशीखाना था उसके लिए
आज पंचायत-भवन बन गया है[55]

मगर तुम खुद सोचो कि डबरे में
डूबता हुआ सूरज
खेत की मेड़ पर खड़े आदमी को
एक लम्बी परछाई के सिवा और क्या दे
सकता है[56]

किसी आदमखोर के जबड़े की तरह
उस मकान का फाटक खुल जाता है
और देखते-ही-देखते
एक समूचा और मुस्कराता हुआ आदमी
उसके भीतर नमक के ढेले-सा
घुल जाता है[57]

वह विदूषक
उस शो-केस के सामने खड़ा है
जिसमें जूते –
पान की गिलौरियों की तरह सजे है[58]

एकाएक –
जंग लगे अचरज से बाहर
आ जाता है आदमी का भ्रम और देश-प्रेम
बेकारी की फटी हुई जेब से खिसक कर
बीते हुए कल में
गिर पड़ता है।[59]

जहाँ पालो और बंजर का फर्क
मिट चुका है चन्द खेत
हथकड़ी पहने खड़े हैं।[60]

इससे पहले कि तने हुए हाथों के
ठूँठ पर
रोशनी की चील बीट कर दे[61]

कविता, सिर्फ उतनी ही देर तक सुरक्षित है
जितनी देर, कीमा होने से पहले,

कसाई के ठीहे और तनी हुई गँड़ास के बीच
बोटी सुरक्षित है।[62]

नदियों की जगह
मरे हुए साँपों की केंचुलें बिछी है
पेड़ -
टूटे हुए रडार की तरह खड़े हैं[63]

गाँवों के गन्दे पनालों से लेकर
शहर के शिवालों तक फैली हुई
कथाकलि की अमूर्त मुद्रा है[64]

मैंने अहिंसा को
एक सत्तारूढ़ शब्द का गला काटते देखा
और ईमानदारी को अपनी चोरजेबें
भरते हुए देखा[65]

मगर मैं जानता हूँ कि मेरे देश का समाजवाद
माल-गोदाम में लटकती हुई
उन बाल्टियों की तरह है जिस पर 'आग' लिखा है
और उनमें बालू और पानी भरा है।[66]

युग-युग से विकास पथ
जिससे आलोकित था
आह ! वही मोती की आभा -
मेरी मुठ्ठी खोल अचानक निकल गयी है[67]

रोशनी के दस्तावेज
फट गये हैं
और टूट गई है
उपलब्धियों की वार्ता[68]

वक्त घड़ी से निकल कर
अंगुली पर आ जाता है और जूता
पैरों में, एक दँत टूटी कंघी
बालों में गाने लगती है[69]

और लोग चकित थे देखकर कि एक नन्हा गुलाब
किस तरह लोहे के पहाड़ को अपनी मुठ्ठी में भीच रहा था[70]

कुनबा आवाक् –
झटके से झूल गयी भाषा की लोथ
पटरा सीवान में
सन्नाटा फाँसी के तख्ते-सा खड़ा था
और हवा –
हत्या की तरह काँप रही थी[71]

मेरे सामने
तुम सूर्य-नमस्कार की मुद्रा में
खड़ी हो[72]

यह है
मेरी कविता : मेरा घर
महरी ! इसे झाड़ू से
मत बुहार
आँचल से साफ कर[73]

मालिक का सीझा हुआ चेहरा
जैसे बासी रोटी पर किसी
शरारती महराज ने
दो आँखें बना दी हों
थाली आते ही मेरी टाँगों के नीचे
एक कुत्ता आ जाता है
कुर्सी से कौर तक फिर वही कुकुरबू[74]

किताबों का झूठ खोल कर
बैठी रहती हैं वहाँ लड़कियाँ
उनके बालों में रात
गिरती रहती है[75]

सन्नाटा –
नीम की पत्तियों में अँगुलियाँ
फिराता है और बैल डकार कर
पिछले खुर से आँख सहलाता है।[76]

मेरा चलना –
बरफ की सिल्ली में बनी

सैकड़ों उदास आँखों का चलना है।[77]

वक्त की चौकी पर बैठे हुए अधेड़
मुंशी की तरह
मैं अपने बहते हुए खून में
तुम्हारें दाँतों की रपट पढ़ता हूँ।[78]

सुअर का छौना किकिया रहा है
एक आदमी उसकी टाँग से
उल्टा लटकाये लिये
जा रहा है[79]

कई बार
देह में कटा हुआ एक टटका घाव
एक रोशनदान बन जाता है
जिससे होकर जिन्दगी की ताज़ा किरण
दुनिया में आती है[80]

कठुआए हुए चेहरों की रौनक
वापस लाने के लिए
उठो और हरियाली पर हमला करो[81]

पास आने पर मालूम हुआ –
धोखे की जगह भाई खड़ा है
उसकी आँखों में हरियाली की जगह
आग है जिस पर बालियाँ
सीझ रही हैं
चैत पक रहा है
उम्मीद के दिन
कुआर से खट रहे हैं
यह जाड़े की शुरुआत है[82]

न सूत भर इधर
न सूत भर उधर
यह रहा कमासुत हथौड़ा –
बजर बनता है
छेनी सँड़सी में ऐसी तनी हैं

जैसे गुदार मांस में धँसा हुआ दाँत
पेंच जहाँ ढीले थे, थर दिये गये हैं
मशीन बिल्कुल तैयार है
खरीद के लिए[83]

प्रतीक विधान

"देवता इन प्रतीकों के कर गये हैं कूच कभी
बासन अधिक घिसने पर मुलम्मा छूट जाता है।"

अज्ञेय की यह पंक्तियाँ समसामयिक कविता के सन्दर्भ में बिल्कुल नूतन एवं सार्थक हैं। जैसे-जैसे कविता का कथ्य बदल रहा है वैसे-वैसे उसके प्रतीकों में भी परिर्वतन हो रहा है। आज सामान्य जीवन में प्रयोग होने वाले शब्दों को कवि प्रतीक के रूप में प्रयोग कर रहा है। प्राचीन काल से काव्य के सृजन में प्रतीकों (अप्रस्तुतों) का विशेष महत्व रहा है। इनका प्रयोग वैदिक साहित्य से ही मिलना आरम्भ हो जाता है। मध्य काल में नायिका के सौन्दर्य के उपमान, भक्ति के उपमान, सामाजिक एवं नैतिक मूल्यों के उपमान और राजनीतिक चेतना के लिए प्रयुक्त अप्रस्तुतों का विशेष महत्व होता था। दरअसल देखा जाय तो कविता का मूल दर्शन प्रतीकों में ही निहित नजर आता है। एक तरफ गुलाब का नायिका के कपोल के रूप में प्रयोग किया गया तो दूसरी तरफ 'अबे सुन बे गुलाब' कहकर भी संबोधित किया गया। प्रतीकों के प्रयोग की परम्परा अति प्राचीन है लेकिन लोन्जाइनस जैसे पाश्चात्य विचारकों ने उपमानों के नये प्रयोग पर बल देना शुरू कर दिया था। भारतीय वाङ्मय के इतिहास में कालीदास ने प्रतीकों की जकड़बंदी के प्रति आवाज उठाई। हिन्दी में रीतिमुक्त कवियों ने प्रतीकों की रूढ़िवादिता की भर्त्सना की है। ठाकुर ने प्रतीकों का विरोध करते हुए लिखा -

सीख लीन्हों मीन-मृग खंजन कमल नैन,
सीख लीन्हों यश प्रताप कौ कहानी है।
सीख लीन्हों कल्पवृक्ष, कामधेनु, चिन्तामणि,
सीख लीन्हों मेरु औ कुबेर-गिरि आनो है।
ठाकुर कहत याकी बड़ी है कठिन बात,
याको कहूँ भूलि नहीं बाँधियत बानो है।
ढेल सो बनाय आय मेलत सभा के बीच,
लोगन कविन्त कीनो खेल करि जानो है।[84]

आधुनिक युग के द्वितीय चरण में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने स्पष्ट घोषणा की थी- भारती को कुछ नवीन आभूषणों से अलंकृत करने में हमें संकोच नहीं करना चाहिए। फिर क्या कारण है कि बेचारी भारती के जेवर वही भरत, कालिदास, भोज इत्यादि के जमाने के ज्यों के त्यों बने हुए हैं? भारती को क्या नवीन पसंद नहीं?

काव्य में प्रतीक सदैव आवश्यक गुण रहा है लेकिन आधुनिक कविता मूलतः प्रतीकों की कविता है। प्रतीक अंग्रेजी के 'सिम्बल' शब्द का पर्यायवाची शब्द है। अंग्रेजी में 'प्रतीक' शब्द की व्याख्या को प्रस्तुत करते हुए 'विश्वकोश' में प्रतीक को अमूर्त का मूर्त रूप कहा गया है।[8] सुप्रसिद्ध विद्वान रेनेवैलेक तथा आस्टिन वारेन के शब्दों में "प्रतीक एक ऐसी वस्तु है जो किसी अन्य वस्तु की ओर संकेत करती है, पर एक प्रस्तुतीकरण के रूप में जिसके अपने स्वरूप की ओर ध्यान देने की अपेक्षा होती है।[87] प्रतीक शब्द का प्रयोग उस दृश्य (अथवा गोचर) वस्तु के लिए किया जाता है जो किसी अदृश्य (अगोचर या अप्रस्तुत) विषय का प्रतिविधान, उसके साथ अपने साहचर्य के कारण करती है। अथवा कहा जा सकता है कि किसी अन्य स्तर की समानरूप वस्तु द्वारा किसी अन्य स्तर के विषय का प्रतिनिधित्व करने वाली वस्तु प्रतीक है। अमूर्त, अदृश्य, अश्रव्य, अप्रस्तुत विषय द्वारा किया जाता है।[88] डॉ. राम कुमार वर्मा का मानना है कि एक ही शब्द में अनेकानेक भावों की अभिव्यक्ति प्रतीक का निर्माण करती है।[89] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने माना है "भावनाओं को मूर्त रूप में रखने की आवश्यकता के कारण कविता की भाषा में दूसरी विशेषता यह रहती है कि उसमें जाति संकेत वाले शब्दों की अपेक्षा विशेष रूप-व्यापार वाले शब्द अधिक रहते हैं। बहुत ऐसे शब्द होते हैं जिनसे किसी एक का नहीं बल्कि बहुत से रूपों या व्यापारों का एक साथ अर्थ ग्रहण हो जाता है।[90] डॉ. नित्यानन्द तिवारी के अनुसार "अप्रस्तुत, अप्रमेय, अगोचर अथवा अमूर्त का प्रतिनिधित्व करने वाले उस प्रस्तुत या अगोचर वस्तु विधान को प्रतीक कहते हैं जो देशकाल या सांस्कृतिक मान्यताओं के कारण हमारे मन में अपने चिरसाहचर्य के कारण तीव्र आलोचना को जागृत करता है।"[91]

नयी कविता के कवियों ने परम्परागत रूढ़ प्रतीकों को खारिज कर दिया है। उनका मानना है कि पुराने प्रतीक बासी और जर्जर हो गये हैं। आज की कविता का कथ्य और परम्परागत कविता के कथ्य में भी काफी अन्तर आ चुका है जिसके फलस्वरूप पुराने प्रतीक नई कविता में फिट नहीं बैठ रहे थे इसीलिए नये कवियों ने रोजमर्रा की जिन्दगी से जुड़ी चीजों को अपने काव्य का प्रतीक बनाया जैसे "उसके सपने ऐसे टूटे जैसे भूना हुआ पापड़"। ऐसे ही प्रतीकों का प्रयोग नयी कविता से शुरू हुआ और अनवरत जारी है। इसका एक कारण यह भी है कि जो सामान्य पाठक वर्ग है वह इन प्रतीकों को बड़ी सहजता के साथ आत्मसात् कर लेता है।

समकालीन कवियों में धूमिल का विशिष्ट स्थान है। उनकी कविताएँ जनवादी विचारधारा से जुड़ी हैं। वे अपने आप को जनता का कवि कहते हैं और आम जनता के हित के लिए साहित्य का सृजन करते हैं। धूमिल के तीनो संग्रहों में इस बात के प्रमाण देखे जा सकते हैं। कुछ विद्वानों ने उनके काव्य पर आरोप लगाया है कि वे उन्होनें यौन सम्बन्धी प्रतीकों का प्रयोग किये हैं जिससे उनके साहित्य में भदेसपन आ गया है, लेकिन यदि धूमिल के साहित्य-दर्शन का विश्लेषण किया जाये तो उनके ऊपर लगे आरोप काफी हद तक निराधार साबित हो जाते हैं। धूमिल ने अपने साहित्य में उन्हीं शब्दों-प्रतीकों का प्रयोग किया है जो यथार्थ को रेखांकित करते हुए पाठकों को भी सोचने के लिए विवश कर दे। धूमिल का मानना है कि अब व्यंग्य से काम चलने वाला नहीं है, अब वक्त है धारदार प्रहार का। धूमिल के काव्य में जहाँ यौन सम्बन्धी प्रतीकों की बहुलता है वहीं सामाजिक, प्राकृतिक प्रतीक भी अधिक देखने को मिलते हैं। उनके काव्य में प्रयुक्त प्रतीकों को निम्नलिखित वर्गों में विभाजित किया जा सकता है –

1. सामाजिक प्रतीक
2. प्राकृतिक प्रतीक
3. यौन सम्बन्धी प्रतीक

सामाजिक प्रतीक

धूमिल जन-मानस के कवि हैं। ग्रामीण समाज से उनका गहरा लगाव है। वे अपने कविता लिखने का उद्देश्य ही समाज को मानते हैं। इसलिए उनके काव्य में सामाजिक प्रतीकों की बहुलता है। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं –

मुहावरों के हवाई हमले से बचने के लिए
जिसके दिमाग में शताब्दियों का अन्धा कूप है।[92]

यहाँ 'अन्धा कूप' निराशा, अन्धकार का प्रतीक है।

मगर चालाक 'सुराजिये'
आजादी के बाद के अन्धेरे में
अपने पुरखों का रंगीन बलगम
'सुराजिये' आधुनिक नेता और
और गलत इरादों का मौसम जी रहे थे[95]

'रंगीन बलगम' 'अय्याशी' कर प्रतीक है।

कुछ आदिम मुहावरों ने
उसके दिमाग की सबसे समझदार
नस को मुर्दा बना डाला है[93]

'आदिम मुहावरे' 'कामांधता' का प्रतीक है।

और मैं समझदार हूँ कि आपके मुँह में
जितनी तारीफ है
उससे अधिक पीक है[94]

'पीक' नफरत का प्रतीक है।

और शहर
अपने जनून में
आहिस्ता-आहिस्ता शीशे और रोशनी में
बदल रहा है[95]

'शीशे और रोशनी' भोग विलास एवं रंगीनियों का प्रतीक है।

अपनी देह
स्वप्न की दीवार बनने से बचाओ[96]

'स्वप्न की दीवार' जड़ता का प्रतीक है।

उस मुहावरे को समझ गया हूँ
जो आजादी और गाँधी के नाम पर चल रहा है
जिससे न भूख मिट रही है, न मौसम
बदल रहा है।[97]

'मुहावरे' यहाँ साजिश और गलत नीति के प्रतीक हैं।

सिसकती हुई आँखों को
एक साथ लाल फीतों में लपेटकर
वे रख देते हैं।[98]

'लाल फीतें' यहाँ फाइलों का प्रतीक है।

खुद को निहत्था साबित करने के लिए
मैने गाँधी के तीन बंदरों की हत्या कर दी[99]

'निहत्था' सात्विक सदाचारी एवं 'तीनों बंदर' बाह्येन्द्रियों की मर्यादा के प्रतीक हैं।

उसके चारों कोनों पर खूनी धब्बे चमक रहे हैं।
मगर मैं अपनी भूखी अँतड़ियाँ हवा में फैलाकर
पूरी नैतिकता के साथ अपने अपने सड़े हुए अंगों को सह रहा हूँ
भेड़िये को भाई कह रहा हूँ।[100]

'खूनी धब्बे' क्राँति रक्तपात एवं 'भेड़िया' पड़ोसी शत्रु राष्ट्र का प्रतीक है।

सबित हो चुकी है और पिघले हुए
शब्दों की परछाई
किसी, खौफनाक जानवर के चेहरे में
बदल गयी है, मेरी कविताएँ
अँधेरा और कीचड़ और गोश्त की
खुराक पर जिंदा है[101]

'पिघलते हुए शब्द' करुणापूर्ण, दयापूर्ण अनुनय का, 'अँधेरा' निराशा का प्रतीक है।

और एक युग बीत गया है
थकी हुयी घायल आहुतियाँ आज शून्य के बंदीगृह में
सिसक उठी[102]

'आहुतियाँ' देशभक्त, बलिदान का प्रतीक है।

लाल कलम से जगह घेर दी
और उसी सीमा के भीतर
अपने घायल कबूतरों को
फिर से उड़ना सिखा रहा हूँ।[103]

'घायल कबूतरों' असफल शांति संदेश का प्रतीक है।

पेट में धँसे छुरे के साथ भागती है अलारक्खी
सस्ते गल्ले की दुकान की बाहरी
दीवार से टकराती है।[104]

'धँसे छुरे' भूख का प्रतीक है।

सब के सब -
रोशनी की आँच से
कुछ ऐसे बचते हैं

कि सूरज को पानी से -
रचते हैं।[105]

'रोशनी' यहाँ सच्चाई का प्रतीक है।

अपने-अपने दराजों की भाषा में बैठकर
गर्म कुत्ता खा रहे थे
सफेद घोड़ा पी रहे थे[106]

'गर्म कुत्ता' ताजा मांस और 'सफेद घोड़ा' अंग्रेजी ब्रांड शराब का प्रतीक है।

प्राकृतिक प्रतीक

धूमिल के काव्य में प्राकृतिक प्रतीकों की बहुलता है। सूरज, रोशनी, वसंत, कीचड़, जंगल, अंधेरा जैसे प्रतीकों को कवि ने अपनी कविताओं में कई स्थानो पर प्रयोग किया है। प्राकृतिक प्रतीक पहले परम्परागत रूप में प्रयोग होते थे लेकिन नई कविता या समकालीन कविता के कवियों ने इन्हें नया रूप प्रदान किया है। कुछ प्रतीक उदाहरणार्थ प्रस्तुत हैं -

इसे अगर कविता की भाषा में कहूँ - 'यह जंगल के खिलाफ
जनतंत्र का मलाल है[107]

जंगल यहाँ अराजकता का प्रतीक है।

मैं एक विशाल बरगद को
सड़क के बीचों-बीच गिरा हुआ
देख रहा हूँ[108]

'बरगद' या कर्णधार, मुखिया का प्रतीक है।

गाँव की तरफ जाते हुए देखा था
उसके पैर वर्तमान की कीचड़ से लथपथ[109]

'कीचड़' यहाँ विकृतियों का प्रतीक है।

मन किसी झुँझलाये हुए बच्चे-सा
काम पर आने से बार-बार इनकार करता है
लगता है चमड़े की रायफल के पीछे
को जंगल है जो आदमी पर
पेड़ से वार करता है[110]

'जंगल' यहाँ सूनापन, खालीपन का प्रतीक है।

फेंक दिया है – 'जनतंत्र'
जिसकी रोज सैकड़ों बार हत्या होती है
और हर बार
वह भेड़ियों की जुबान पर जिन्दा है[111]

'भेड़िया' नरभक्षी, राष्ट्र-शोषक का प्रतीक है।

जब फूल और गोश्त में
फर्क करने के सारे सबूत मिटाकर
वह बिस्तर से खिड़की तक
फैलकर सो जाती है।[112]

'फूल' सौन्दर्य और 'गोश्त' वहशीपन का प्रतीक है।

पेड़ के लिए
तुमने जंगल से बहस की[113]

'पेड़' अस्तित्व एवं 'जंगल' स्वयंभू का प्रतीक है।

गिद्धों की आँखों के खूनी कोलाहल और ठण्डे लोगों की
आत्मीयता से बचकर[114]

'गिद्ध' नरभक्षी का प्रतीक है।

उस वक्त रास्ता नहीं होती
जब हमारे भीतर तरबूज कट रहे हों
मगर हमारे सिर तकियों पर
पत्थर हो गये हैं[115]

'तरबूज' यहाँ मनसूबे, एवं भोगलिप्सा का प्रतीक है।

मौसमों की अंगुलियाँ अलग-अलग
उपटी हुई हैं[116]

'मौसम' यहाँ परिस्थितियों का प्रतीक है।

खाना खा चुकने के बाद अन्धे हो जाते हैं
जवान लड़कियाँ अँधेरा पकड़ लेती हैं।[117]

'अंधेरा' मर्यादाहीनता या चरित्र-स्खलन का प्रतीक है।

आह ! वही मोती की आभा –
मेरी मुट्ठी खोल अचानक निकल गई है[118]

'मोती' जवाहर लाल नेहरू का प्रतीक है।

निष्कर्ष

धूमिल के काव्य में बिम्बों एवं प्रतीकों का प्रयोग बहुलता से हुआ है। उनके ज्यादातर बिम्ब सरल हैं, किन्तु कहीं-कहीं संश्लिष्ट बिम्बों का प्रयोग भी धूमिल ने किया है। उनके साहित्य में कुछ बिम्ब एवं प्रतीक अधिक मात्रा में पाये जाते हैं। धूमिल ने सामाजिक बिम्बों एवं प्रतीकों के माध्यम से अपने साहित्य को अधिक उत्कृष्ट बनाने का प्रयास किया है। उनका साहित्य प्रतीकों का साहित्य है यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी।

सन्दर्भ

1. उद्धृत, महादेवी के काव्य विधान, डॉ0 सुधा श्रीवास्तव, पृ0 40
2. शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्। काब्यालंकार-भामह 1/16
3. रमणीयार्थ प्रतिपादकः शब्द काव्यम् रसगंगाधर जगन्नाथ 1/1
4. प्रिंसिपल आफ लिटरेरी क्रिटिसिज्म - आई0ए0 रिचर्डस, पृ0 267
5. अनुभूति और चिन्तन - डॉ0 प्रभाकर शुक्ल, पृ0 71
6. कल सुनना मुझे - धूमिल, पृ0 29
7. संसद से सड़क तक - धूमिल, पृ0 08
8. वही, पृ0 65
9. वही, पृ0 07
10. जायसी की भाषा - डॉ0 प्रभाकर शुक्ल, पृ0 221
11. देव के काव्य में अभिव्यक्ति विधान - डॉ0 राजबुद्धिराजा, पृ0 158
12. उद्धत-काव्य विम्ब और छायावाद - डॉ0 सुरेन्द्र माथुर, पृ0 03
13. The Poetic Image- C day Lewis, P 18
14. चिन्तामणि भाग एक - रामचन्द्र शुक्ल, पृ0 147, 148
15. सुदामा पाण्डे का प्रजातंत्र, धूमिल, पृ0 42
16. संसद से सड़क तक - धूमिल, पृ0 42
17. काव्य विम्ब और छायावाद - डॉ0 सुरेन्द्र माथुर, पृ0 60
18. काव्य बिम्ब - डॉ0 नागेन्द्र, पृ0 09
19. वही, पृ0 45
20. वही, पृ0 44
21. संसद से सड़क तक, धूमिल, पृ0 19
22. वही, पृ0 91

23. काव्य बिम्ब, डॉ0 नगेन्द्र पृ0 01
24. संसद से सड़क तक - धूमिल, पृ0 119
25. वही, पृ0 90
26. वही, पृ0 23
27. वही, पृ0 61
28. काव्य विम्ब - डॉ0 नगेन्द्र, पृ0 54
29. वही, पृ0 64
30. वही, पृ0 107
31. कल सुनना मुझे, धूमिल, पृ0 7
32. वही, पृ0 31
33. वही, पृ0 35
34. वही, पृ0 68
35. कल सुनना मुझे, धूमिल, पृ0 43
36. वही, पृ0 23
37. वही, पृ0 7
38. वही, पृ0 58
39. वही, पृ0 59
40. काव्य बिम्ब, डॉ0 नगेन्द्र, पृ0 12
41. संसद से सड़क तक, धूमिल, पृ0 10
42. वही, पृ0 11
43. वही, पृ0 12
44. काव्य-बिम्ब : डॉ0 नगेन्द्र, पृ0 13
45. संसद से सड़क तक - धूमिल, पृ0 13-14
46. वही, पृ0 17
47. वही, पृ0 20
48. वही, पृ0 24
49. वही, पृ0 25
50. वही, पृ0 30
51. वही, पृ0 30
52. वही, पृ0 31-32
53. वही, पृ0 35
54. वही, पृ0 43

55. वही, पृ0 46
56. वही, पृ0 48
57. वही, पृ0 51
58. वही, पृ0 56
59. वही, पृ0 60
60. वही, पृ0 68
61. वही, पृ0 80
62. वही, पृ0 86
63. वही, पृ0 103
64. वही, पृ0 103
65. वही, पृ0 120
66. वही, पृ0 127
67. कल सुनना मुझे, धूमिल, पृ0 7
68. वही, पृ0 110
69. वही, पृ0 18
70. वही, पृ0 22
71. कल सुनना मुझे, धूमिल, पृ0 38
72. वही, पृ0 50
73. वही, पृ0 64
74. सुदामा पाण्डेय का प्रजातंत्र : धूमिल, पृ0 25
75. वही, पृ0 31
76. वही, पृ0 33
77. वही, पृ0 41
78. वही, पृ0 62
79. वही, पृ0 66
80. वही, पृ0 71
81. वही, पृ0 82
82. वही, पृ0 83
83. वही, पृ0 100
84. उद्धृत बिम्ब : डॉ0 नगेन्द्र, पृ0 40
85. आरती भूषण की प्रस्तावना में उद्धृत महावीर प्रसाद द्विवेदी का पत्र
86. इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका, भाग 12, पृ0 700

87. रेनवेलेक तथा आस्टीन कारने, साहि0 सिद्धांत, अनुवादक कृष्ण दत्त पालीवाल, पृ0 146
88. हिन्दी साहित्य कोश, पृ0 441
89. साहित्य शास्त्र : डॉ0 रामकुमार वर्मा, पृ0 118
90. चिन्तामणि भाग-1 - आचार्य शुक्ल, पृ0 176
91. आधुनिक हिन्दी काव्य में प्रतीक विधान : डॉ0 नित्यानंद तिवारी, पृ0 134-135
92. ससंद से सड़क तक : धूमिल, पृ0 45
93. वही, पृ0 46-47
94. वही, पृ0 64-65
95. वही, पृ0 75
96. वही, पृ0 79
97. वही, पृ0 16
98. वही, पृ0 11
99. वही, पृ0 24
100. वही, पृ0 25
101. वही, पृ0 27
102. कल सुनना मुझे : धूमिल, पृ0 7
103. वही, पृ0 15
104. वही, पृ0 19
105. वही, पृ0 28
106. संसद से सड़क तक : धूमिल, पृ0 47
107. कल सुनना मुझे : धूमिल, पृ0 22
108. वही, पृ0 8
109. संसद से सड़क तक-धूमिल, पृ0 35
110. वही, पृ0 41
111. वही, पृ0 44
112. वही, पृ0 52
113. वही, पृ0 79
114. वही, पृ0 125
115. वही, पृ0 28
116. वही, पृ0 54
117. वही, पृ0 50
118. कल सुनना मुझे - धूमिल, पृ0 7

षष्ठ अध्याय

पटकथा के बहाने लम्बी कविताओं की पड़ताल

आज की आपाधापी के युग में व्यक्ति के चिंतन में नवीनता और शैली में बदलते परिवेश के अनुरूप बदलाव आ रहा है। मनुष्य की मूलभूत जरूरतों ने सम्पूर्ण सामाजिक ढाँचे को बदल कर रख दिया है। आज का मानव परम्परागत मूल्यों को तोड़ने एवं उन्हें युगानुरूप करने में अपनी पूरी उर्जा समाप्त कर देता है। उसकी नयी-नयी चुनौतियों ने परम्परागत मूल्यों को झकझोर दिया है। उसके इस बदलते स्वरूप से साहित्य भी अछूता नहीं है। पुरातन काव्य विधाएं आज की इन विसंगतियों, विरूपताओं, विडम्बनाओं, अनास्था, परिवेशीय यथार्थ आदि के रेखांकन में बौनी साबित हुई हैं। पारम्परिक काव्य-रूपों क्रो आत्मसात् कर काव्य सृजन करने वाले कवियों के समक्ष आज के यथार्थ का अंकन एक चुनौती है। आज का पाठक उपदेश या रसात्मकता का कायल नहीं है। वह अपने सामने घटित हर सच्चाई की तह तक पहुँचना चाहता है और वातावरण में व्याप्त हर कसमसाहट को अभिव्यक्ति देना चाहता है। इसीलिए वह साहित्य को माध्यम बनाकर सामाजिक विसंगतियों, अमानवीयताओं, भयावहताओं आदि को प्रस्तुत करना चाहता है। वह ऐसे साहित्य का निर्माण नहीं चाहता है जिससे कथ्य के संयोजन में ही सारी शक्ति लग जाती हो, अपितु ऐसे साहित्य के सृजन का पक्षधर है जो सामाजिक यथार्थ का नग्न रेखांकन करने में समर्थ हो। साहित्कार की इसी सोच ने हिन्दी साहित्य में 'लम्बी कविता' को जन्म दिया। डॉ. परमानन्द श्रीवास्तव के शब्दों में – "कविता में प्रबन्धात्मकता की कला कई मोड़ों से होकर उस काव्य विधा तक पहुँची है जिसे हम लम्बी कविता कहते हैं। आधुनिक भारतीय जीवन में जो विडम्बनायें शहरी मध्यम वर्ग को प्रायः घेरे रहती हैं उनमें बौद्धिक कलात्मक अनुशासनों से अपने को निरन्तर सम्पृक्त रखने की विकलता बनी रहती है। साधारण और असाधारण का बनाव बना रहता है– उन्हें जब हम इधर की लम्बी कविता के दृश्यालेख में घटित होते देखते हैं तो इतिवृत्त में संक्रमित होता हुआ एक बहुत सूक्ष्म नाट्य व्यापार कविता में रूप लेता दिखायी देता है।"[1] लम्बी कविता इस यातनाग्रस्त एवं संघर्ष भरे मानवीय जीवन का काव्यात्मक रेखांकन है जिसमें बासी आस्थाओं, जड़ अन्धविश्वासों, वर्गीय विषमताओं पर जितना तीव्र एवं सटीक प्रहार हुआ है उतना पहले की काव्य विधाओं मे लक्षित नहीं होता। लम्बी कविताओं के कथ्य

के मूल में राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक विसंगतियों एवं मूल्यहीन मूल्यों के प्रति विद्रोह देखा जा सकता है। डॉ. युद्धवीर धवन के शब्दों में – "लम्बी कविता एक नये काव्य माध्यम और नयी शिल्प दृष्टि के रूप में उभरकर सामने आयी। यह आज के जीवन के बिखराव को व्यक्त करने में सर्वाधिक समर्थ और सक्षम काव्यरूप है।"[2]

हिन्दी साहित्य में लम्बी कविता का इतिहास बहुत प्राचीन नहीं है। लम्बी कविता का स्वतंत्र रूप सुमित्रानन्दन पंत के 'परिवर्तन' (सन् 1926) से देखा जा सकता है। इसके बाद इस विधा ने उत्तरोत्तर अपनी अमिट छाप साहित्य में छोड़ी और आज यदि सामाजिक, राजनीतिक यथार्थ एवं विद्रूपताओं के रेखांकन का सबसे सशक्त माध्यम किसी को माना जा सकता है तो वह लम्बी कविता ही है। पन्त के बाद लम्बी कविता का जो दौर चला उसमें प्रसाद की 'प्रलय की छाया' और निराला की 'राम की शक्ति-पूजा' छायावाद की सशक्त रचनायें हैं। इसके बाद इस विधा में प्रस्तुति की नयी-नयी भंगिमायें निरन्तर विकसित होती रहीं। नयी कविता के दौर की चर्चित लम्बी कविताओं में अज्ञेय की 'असाध्य वीणा', नरेश मेहता की 'समय देवता', मुक्तिबोध की 'अंधेरे में', रघुवीर सहाय की 'आत्महत्या के विरुद्ध', सर्वेश्वर की 'कुआनो नदी' आदि प्रमुख हैं। इसी प्रकार राजकमल चौधरी की 'मुक्ति प्रसंग', केदारनाथ सिंह की 'माझी का पुल', धूमिल की 'पटकथा', लीलाधर जगूड़ी की 'बलदेव खटिक', श्रीराम वर्मा की 'एक स्त्री', देवेन्द्र कुमार की 'परिसंवाद', सौमित्र मोहन की 'लुकमान अली', रामदरश मिश्र की 'फिर वही लोग', नागार्जुन की 'हरिजन गाथा', ओम प्रकाश निर्मल की 'कुछ हो रहा है', बलदेव वंशी की 'उपनगर में वापसी', विनय की 'यात्रा के बीच', प्रताप सहगल की 'सवाल अब भी मौजूद है', नरेन्द्र मोहन की 'अग्निकांड जगहें बदलता है' और 'एक अदद सपने के लिए' आदि समकालीन हिन्दी साहित्य की सशक्त लम्बी कवितायें हैं।

यदि पन्त से लेकर नरेन्द्र मोहन तक की लम्बी कविताओं पर सूक्ष्म दृष्टि डालें तो साफ हो जाता है कि लम्बी कविता ने हिन्दी साहित्य में एक बृहद् यात्रा तय की है और आज एक सशक्त काव्य विधा का रूप धारण कर लिया है। इन कविताओं के अध्ययन से एक बात और भी स्पष्ट हो जाती है कि छायावादी लम्बी कविताओं का केन्द्र आख्यान रहा, नयी कविता का केन्द्र फैन्टेसी, बिम्ब एवं प्रतीक रहे, जबकि समकालीन लम्बी कविताओं का केन्द्र बिन्दु वैचारिक द्वन्द्व और अतियथार्थ रहा है। अद्यतन साहित्य में लम्बी कविता आज की समसामयिक, सामाजिक, राजनीतिक जीवन की कुरीतियों के क्रूर पंजों में फँसे छटपटाते, तड़पते व्यक्ति को एक मानवीय धरातल पर प्रतिष्ठित करने का प्रयास करती है। वह शोषक एवं शोषित वर्ग के बीच की दूरी को कम करना चाहती है। डॉ. युद्धवीर धवन के शब्दों में – "समकालीन

लम्बी कविता में राजनीतिक विसंगतियों, विद्रूपताओं के प्रति गहरी चिंता है। राजनीति के विध्वंसकारी झंझावात ने लोकतंत्र की मर्यादाओं को उखाड़कर तहस-नहस कर दिया। इसके खूँखार पंजे में फँसी आम आदमी की अस्मिता बुरी तरह छटपटा रही है। लम्बी कविता में राजनीति की इस अमानवीयता के प्रति विद्रोह, आक्रोश और वितृष्णा के तेवर विद्यमान हैं।"[3]

समसामायिक परिवेश में तड़पते-छटपटाते आम आदमी की पीड़ा एवं उसके क्षीण होते जीवन-मूल्यों का लेखा-जोखा है पटकथा। लम्बी कविताओं के रचना-विधान में धूमिल की 'पटकथा' का महत्त्वपूर्ण योगदान है। खासतौर से सन् साठ के बाद के बदलते साहित्यिक परिवेश में धूमिल ने जिस तरह से स्वतंत्र भारत की आशा, निराशा, घुटन-संत्रास, समकालीन जीवन मूल्यों का बिखराव और प्रजातंत्र की उड़ती धज्जियों को प्रस्तुत किया है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। कवि अपनी वैचारिकता, तर्क एवं विश्लेषण के माध्यम से पारिवेशिक नृशंसताओं, क्रूरताओं और सामाजिक-राजनैतिक अव्यवस्था को पैदा करने वाले सामाजिक-राजनैतिक मठाधीशों के मुखौटों को उतार फेंकना चाहता है।

सन् 1972 में प्रकाशित 'पटकथा' धूमिल की एक आत्मपरक लम्बी कविता है जिसमें कवि ने स्वाधीन भारतीय नागरिक की पूरी यातना को यथार्थ की जमीन पर रेखांकित किया है। इस कविता की शुरूआत ही आत्मपरक ढंग से होती है-

जब मैं बाहर आया
मेरे हाथ में
एक कविता थी और दिमाग में
आँतों का एक्स-रे।
वह काला धब्बा
जो कल तक एक शब्द था;
खून के अँधेरे में
दवा की शीशी का ट्रेडमार्क
बन गया था।[4]

उक्त कविता के माध्यम से धूमिल ने स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए कर रहे संघर्ष और उसके आजादी के बाद आस्था विश्वास और उत्साह के जो नव अंकुर समाज में उत्पन्न हो रहे थे और उसके बाद की परिस्थितियों की बदरंग छायायें व्यक्ति की आस्था की जड़ें जिस तरह से खोखली कर रहीं थीं, जनतंत्र जिस प्रकार तमाशा बन रहा था, राजनीति एवं नेतागिरी व्यवसाय बन गई थी, उससे मानव का हृदय सूख

कर दरक रहा था। समाज में चारों तरफ निराशा, कुण्ठा और आत्म-प्रलाप व्याप्त था। आजादी के 30-35 साल बाद यह स्थिति और भी भीषण रूप धारण कर रही थी। हर तरफ शोषण, बलात्कार, अमानवीयता और वर्ग-वैषम्य रूपी सुरसा मुँह फैलाये खड़ी थी। ऐसे में कल्पना और यथार्थ की कविता से लोगो का मोहभंग होने लगा था। सन् साठ के बाद साहित्य में एक विशेष बदलाव आया और शैली में जोरदार परिवर्तन हुए। स्वप्निल चश्मे को उतारकर कवियों ने अति नग्न यथार्थवादी चश्मे को पहन लिया और समाज में जो व्यवस्था जिस रूप में दिखी कवियों ने अपनी लेखनी के माध्यम से उसे खुरचने में तनिक भी गुरेज नहीं किया। स्वतंत्रता के बाद मिलने वाले वादे और खुशियों का जिक्र करता हुआ कवि कहता है-

मैंने कहा आजादी . . . .
मुझे अच्छी तरह याद है -
मैंने यही कहा था
मेरी नस-नस में बिजली
दौड़ रही थी
उत्साह में
खुद मेरा स्वर
मुझे अजनबी लग रहा था
मैंने कहा आ-ज़ा दी।[5]

देश आजाद होने के बाद आम आदमी के साथ धूमिल ने भी भविष्य में मूलभूत आवश्यकताओं की सहजपूर्ति की जो कल्पना कर रखी थी, दुर्भाग्यवश उनकी यह कल्पना मात्र दिवा स्वप्न ही रह गई देश की ऐसी आजादी से आम आदमी के साथ ही कवि का भी मोहभंग हुआ और वह अपने को ठगा महसूस करने लगा। वह कहता है-

अब कोई बच्चा
भूखा रहकर स्कूल नहीं जायेगा
अब कोई छत बारिश में
नहीं टपकेगी
अब कोई आदमी कपड़ों की लाचारी में
अपना नंगा चेहरा नहीं पहनेगा
अब कोई दवा के अभाव में

घुट-घुट नहीं मरेगा
अब कोई किसी की रोटी नहीं छीनेगा
अब कोई किसी को नंगा नहीं करेगा
अब यह जमीन अपनी है
आसमान अपना है
जैसा पहले हुआ करता था –
सूर्य, हमारा सपना है
मैं इन्तजार करता रहा . . . .
इन्तजार करता रहा . . . .
जनतंत्र, त्याग स्वतंत्रता . . . .
संस्कृति, शान्ति, मनुष्यता . . . .
ये सारे शब्द थे
सुनहरे वादे थे
खुशफहम इरादे थे।[6]

धूमिल का यह सपना मात्र उनका नहीं बल्कि सम्पूर्ण भारत का था और इसे पूरा होने की उम्मीद में लोकनायक नेहरू को जनता बार-बार चुनती रही लेकिन समस्याओं के हल 'कोट के बटन-होल में महकते गुलाब' के द्वारा कभी संभव नहीं हो सके। सरकार नित नूतन वादे करती रही, योजनाएं फाइलों में बनती रही और आम व्यक्ति इसी लालसा में एक-एक दिन काटता रहा। क्योंकि राजनीतिक छल-छद्म को समझने में आम आदमी को काफी समय लग गया और जब वह उनकी भाषा को समझा तब तक काफी देर हो चुकी थी। धूमिल बनती हुई योजनाओं और बनाने वालों पर व्यंग्य करते हुए कहते हैं –

यानी कि कोट की बटन-होल में
महकता हुआ एक फूल
गुलाब का।
वह हमें विश्व शान्ति और पंचशील के सूत्र
समझाता रहा। मैं खुद को
समझता रहा जो मैं चाहता हूँ –
वही होगा – आज नही तो कल
मगर, सब कुछ सही होगा।[7]

आगे योजनाओं की चर्चा करते हुए धूमिल कहते हैं-

भीड़ बढ़ती रही।
चौराहे चौड़े होते रहे
लोग अपने-अपने हिस्से का अनाज
खाकर-निरापद भाव से
बच्चे जनते रहे।
योजनाएँ चलती रहीं
बन्दूकों के कारखानों में
जूते बनते रहे।[8]

धूमिल का व्यंग्य ऊपर से देखने में भले ही साधारण लगे लेकिन इतना पैना और तीक्ष्ण है कि अपनी बात को उन तक जरूर पहुँचा देता है जो इसके जिम्मेदार हैं। भारत स्वाधीन हुआ, जनता लोक नायक नेहरू को बार-बार चुनती रही, क्योंकि उसे आशा थी कि इस पंचवर्षीय योजना में आम जीवन की बदहाली जरूर दूर हो जायेगी, लेकिन यह सबसे बड़ी विडम्बना थी कि आम आदमी नेताओं की गोल-मोल बातों को समझ नहीं पाता और नेता आम आदमी से खेलता रहा, उनकी भावनाओं से खेलता रहा। प्रारम्भ में जनता आजादी, जनतंत्र, शान्ति, संस्कृति से प्यार करती रही। लेकिन धीरे-धीरे स्थितियाँ वीभत्स होती गई। पूंजीपति वर्ग नेताओं का संरक्षण कर शोषण करते रहे। देश की आजादी का सबसे बड़ा मोहभंग तब हुआ जब भारत चीन से युद्ध हार गया। युद्ध की लपटों से पूरा देश जलकर शमशान बन गया।

कवि कहता है -

मगर एक दिन मैं स्तब्ध रह गया।
मेरा सारा धीरज
युद्ध की आग से पिघलती हुई बर्फ में
बह गया।
मैंने देखा कि मैदानों में
नदियों की जगह
मरे हुए साँपों के केंचुलें बिछी हैं
पेड़ -
टूटे हुए रडार की तरह खड़े हैं
दूर-दूर तक
कोई मौसम नहीं है

लोग –
घरों के भीतर नंगे हो गये है
बाहर मुर्दे पड़े हैं।[9]

'पटकथा' के माध्यम से धूमिल ने आत्महीन राजनीति और आम सामाजिक जीवन से खिलवाड़ कर रही व्यवस्था पर गहरा आक्रोश व्यक्त किया है। कवि देश में चल रहे उच्चवर्गीय कुचक्र से आक्रोशित है जिसमें मामूली आदमी पिस रहा है। राजनीति के ठेकेदार, राजनेता एक षडयन्त्र के तहत कार्य कर रहे हैं, छल-छद्म, पाखण्ड, मानव विरोधी हरकतें करना उनके लिए आम बात हो गयी है। राजनेता समाजवाद के नाम पर जनता को ठगने में लगे हैं और जनता कुछ कर नहीं पा रही है या यूँ कहा जा सकता है कि इनकी साजिश का शिकार सालों से होती आ रही है। कवि आजादी, जनतंत्र और समाजवाद जैसे शब्दों को सुनकर विक्षुब्ध हो जाता है। उसका मानना है कि नेताओं के किये हुए वायदे झूठे हैं। नेता त्याग संस्कृति-शान्ति की दुहाई देकर जनता को धोखा देने में और चुनाव जीतने में हर बार सफल हो रहे हैं। धूमिल के शब्दों में –

जनतंत्र, त्याग, स्वतंत्रता . . . .
संस्कृति, शान्ति, मनुष्यता . . . .
ये सारे शब्द थे
खुशफ़हम इरादे थे
मतदान होते रहे
मैं अपनी सम्मोहित बुद्धि के नीचे
उसी लोक नायक को
बार-बार चुनता रहा
जिसके पास हर शंका
और हर सवाल का
एक ही जवाब था
यानी कि कोट के बटन-होल में
महकता हुआ एक फूल
गुलाब का।
वह हमें विश्व शान्ति और पंचशील के सूत्र
समझता रहा-जो मैं चाहता हूँ –
वह होगा। होगा-आज नही तो कल
मगर सब कुछ सही होगा।[10]

धूमिल ने उक्त कविता के माध्यम से सम्पूर्ण समाज की यातनागत एवं विखंडित समाज का यथार्थ अंकन करने का प्रयास किया है। 'पटकथा' के नायक के हृदय में जहाँ निराशा और अनास्था दिखती है वहीं उसका हमशक्ल हिन्दुस्तान आशावादी है। कवि जनतंत्र की विफलता, असमर्थता और नौकरशाही की असहायता से प्रारम्भ करके, भारतीय संविधान की कमी, चुनावी ताण्डव, राजनीतिक विघटन एवं उसके कलुषित रूप, मीडिया की नकारात्मक भूमिका, बुद्धिजीवियों की अकर्मण्यता, नपुंसकता आदि को आम भारतीय जनता की यातना-विसंगति और मोहभंग का जिम्मेदार ठहराता है। धूमिल का मानना है कि आज जनतंत्र अपराधियों के हाथ की कठपुतली बन चुका है। हत्या, अपहरण और लोगों के निवाले छीनना इनके लिए आम बात हो गई है। कवि के शब्दों में -

उसको समझा दिया गया है कि यहाँ
ऐसा जनतंत्र है जिसमें
जिन्दा रहने के लिए
घोड़े और घास को
एक-जैसी छूट है
कैसी विडम्बना है
कैसा झूठ है
दरअस्ल, अपने यहाँ जनतंत्र
एक ऐसा तमाशा है
जिसकी जान
मदारी की भाषा है।[11]

देश के नेता जनता की आँखों में धूल झोंकने के लिए बार-बार समाजवाद की दुहाई देते हैं। अकाल एवं अन्य आकस्मिक आपदाओं के समय प्राप्त सरकारी धन को वांछित लोगों तक वे नहीं पहुँचने देते हैं और स्वयं सारा धन डकार लेते हैं। धूमिल ने ऐसे नेताओं और उनकी समाजवादी सोच पर कशाघात किया है-

भूख और भूख की आड़ में
चलायी गयी चीजों का अक्स
उनके दाँतों पर ढूँढ़ना
बेकार है। समाजवाद
उनकी जुबान पर अपनी सुरक्षा का
एक आधुनिक मुहावरा है।

मगर मैं जानता हूँ कि मेरे देश का समाजवाद
मालगोदाम में लटकती हुई
उन बाल्टियों की तरह है
जिस पर 'आग' लिखा है
और उनमें बालू और पानी भरा है।[12]

देश की आजादी के बाद समस्यायें निरन्तर बढ़ती गई। जनता के सामने नेताओं की नयी–नयी घोषणाएँ होती रहीं जिनके मूल में जनता का हित कम अपना स्वार्थ अधिक था। नेताओं के इस कुचक्र को जनता पहचानती थी लेकिन बार–बार उनके मनमोहक छलावें में आ जाती थी। शासकों और पूँजीपतियों की मिली भगत से जनता शोषण के मकड़जाल में फँसकर किंकर्तव्यविमूढ़ थी। धूमिल ने जनता की इस बेबसी को निम्नलिखित पंक्तियों में रेखांकित किया है –

यह मेरा देश है . . . .
हिमालय से लेकर हिन्द महासागर तक
फैला हुआ
जली हुई मिट्टी का ढ़ेर है
जहाँ हर तीसरी जुबान का मतलब –
नफरत है।
साजिश है।
अंधेर है।
यह मेरा देश है।
और यह मेरे देश की जनता है
जनता क्या है?
एक शब्द . . . . सिर्फ एक शब्द है
कुहरा और कीचड़ और काँच से
बना हुआ . . . .
एक भेड़ है
जो दूसरो की ठण्ड के लिए
अपनी पीठ पर
ऊन की फसल ढो रही है।[13]

देश आजाद हो गया लेकिन स्वतंत्र भारत में व्यवस्थाएँ गाँधी के सपनों के अनुरूप ढल नहीं पायी। पटकथा का लेखक दो चरित्रों में उसे रेखांकित करने का प्रयास बराबर करता नजर आता है। कभी वह हिन्दुस्तान की जनता बनकर अपनी

क्षुब्धता को व्यक्त करता है तो कभी स्वयं हिन्दुस्तान बनकर हो रहे अन्याय, अत्याचार का वर्णन करता है। हिन्दुस्तान के रूप में नायक की भूमिका निभाते हुए धूमिल कहते हैं -

मैंने अहिंसा को
एक सत्तारूढ़ शब्द का गला काटते हुए देखा
मैंने ईमानदारी को अपनी चोर जेबें
भरते हुए देखा
मैंने विवेक को
चापलूसों के तलवे चाटते हुए देखा . . . .
मैं यह सब देख ही रहा था कि एक नया रेला आया -
उन्मत्त लोगों का बर्बर जुलूस। वे किसी आदमी
को हाथों पर गठरी की तरह उछाल रहे थे

O. O O

मैं हतप्रभ-सा खड़ा था
और मेरा हमशक्ल
मेरे पैरों के पास
मूर्छित-सा
पड़ा था।[14]

धूमिल की एक छोटी कविता है 'रोटी और संसद' जिसमें कवि प्रश्न खड़ा करता है कि एक व्यक्ति है जो गेहूँ उपजाता है, और उसकी रोटी कोई और खाता है। अपने देश में एक तीसरा व्यक्ति भी है जो न गेहूँ उपजाता है न रोटी खाता है बल्कि उससे खेलता है। धूमिल पूछते हैं कि यह तीसरा आदमी कौन है? देश की संसद मौन है। कुछ इसी तरह के भाव उपर्युक्त कविता में है। भारत का आम आदमी अपनी पीठ पर ऊन की फसल ढोता है लेकिन दुर्भाग्यवश जब उसकी जरूरत उसे पड़ती है तो उसके पीठ के ऊन को छीन लिया जाता है। यह छीनने वाला कोई और नहीं बल्कि पूँजीपति है जो जनता का सच्चा शोषक है। विडम्बनाओं का जन्मदाता है। यहाँ की शासन प्रणाली में जिन्दा रहनें के लिए घोड़े और घास को एक जैसी छूट है। इसी बात से अन्दाजा लगाया जा सकता है कि देश में कितनी विषमता है। आम आदमी बिना सुविधा शुल्क दिये सुविधाभोगी वर्ग से बच नहीं सकता। पूँजीपति दिन प्रतिदिन धनी होता जा रहा है और आम आदमी को दो वक्त की रोटी नसीब नहीं हो रही है। देश जब स्वतंत्र हुआ तो लोगों को आश्वासन दिया गया कि अब समानता आयेगी, लेकिन

व्यक्ति बदल गये, कुर्सी और कार्य पद्धति ज्यों की त्यों रह गयी। देश के जनतंत्र प्रणाली को देखकर कभी-कभी भ्रम होने लगता है कि अंग्रेज कुर्सी पर हैं या भारतीय। जो भी हो, प्रणालियाँ, व्यवस्थाएँ और आश्वासनों का दौर वैसा ही चल रहा है जैसे स्वतंत्रता के पहले था। आज भारत का जनतंत्र एक तमाशा बनकर रह गया है जिसकी जान मदारी की भाषा है। धूमिल ने तो यहाँ तक कह दिया कि-

मुझसे कहा गया कि संसद
देश की धड़कन को
प्रतिबिम्बित करने वाला दर्पण है
जनता का
जनता के विचारों का
नैतिक समर्पण है
लेकिन क्या यह सच है?
या यह सच है कि
अपने यहाँ संसद
तेली की एक घानी है
जिसमें आधा तेल
और आधा पानी है।
और यदि यह सच नहीं हैं
तो वहाँ एक ईमानदार आदमी को
अपनी ईमानदारी का
मलाल क्यों है?[15]

नग्नता तक बढ़ी आर्थिक बेहाली, मृतकों के प्रति संवेदनशील उपेक्षा पर वीरता दिखाने वालों की पत्नियों को प्रदान किये जाते तमगों की विडम्बना, असुरक्षित स्थितियों से सधवाओं के मंगल गीत गाने के पीछे जनता के शोषण की लम्बी चौड़ी कहानी है जो आम आदमी से लेखक की संवेदना को जोड़ती है। धूमिल के आम आदमी की मानसिकता से जुड़ने के उत्कृष्ट प्रयास में यह प्रक्रिया स्वाभाविक थी। उनकी कविताओं में समाज के साधारण जनों के मनोभाव, दुख-दर्द, कसक, वैचारिक अभिव्यंजना खूब सजीवता से उभरती है।[16]

डॉ0 युद्धवीर धवन के शब्दों में कवि का मानना है कि इस देश का बुद्धिजीवी वर्ग पूर्णतः अवसरवादी बन चुका है। यह शब्दों के जंगल में, व्यर्थ बहसों में, देश की समस्याओं का हल ढूढ़ने का प्रयास करता है।

'चन्द टुच्ची सुविधाओं के सामने बुद्धिजीवी के अभियोग की भाषा चूक जाती है। वह सत्ताधारी द्वारा आसानी से खरीद लिया जाता है।' धूमिल का मानना है कि ये सब के सब तिजोरियों के दुभाषिये हैं। कवि के शब्दों में –

हरेक का दरवाजा खटखटाया है
मगर बेकार . . . . मैंने जिसकी पूँछ
उठायी है उसको मादा
पाया है।
वे सब के सब तिजोरियों के
दुभाषिये हैं।
वे वकील है। वैज्ञानिक है।
अध्यापक है। नेता है। दार्शनिक
है। लेखक है। कवि है। कलाकार है।
यानी कि –
कानून की भाषा बोलता हुआ
अपराधियों का एक संयुक्त परिवार है।[17]

भारत की स्वतंत्रता को लेकर लोगों में उत्साह था उनको लगता था कि स्वतंत्रता मिलने के बाद सुराज आयेगा। व्यवस्था बदलेगी, विचारधाराएँ बदलेंगी और भारत में समानता की धारणा प्रतिष्ठित होगी, लेकिन स्वतंत्रता के बाद कुछ भी नहीं बदला। लगभग वही छल-छूदम, वही भेदभाव कायम रहा। धूमिल की नजरों में यदि कुछ बदला तो वह है –

हाँ यह सही है कि कुर्सियाँ वही हैं
सिर्फ, टोपियाँ बदल गयी हैं।[18]

धूमिल ने 'पटकथा' के माध्यम से मौजूदा अपंग और अपाहिज समाज की हालत के लिए शासन को जिम्मेदार ठहराया और व्यवस्था के प्रति खुले विद्रोह का ऐलान किया। क्योंकि जो व्यवस्था की धुरी है वह अन्याय और दमन पर टिकी है। कवि का विद्रोह रोजमर्रा के जीवन से है, सामाजिक, राजनीतिक विसंगतियों से है। डॉ0 नरेन्द्र मोहन के शब्दों में "मनुष्य जब दासता की मनोवृत्ति से उबरने के लिए, पाखण्ड को उघाड़ने के लिए, अन्यायपूर्ण और आततायी स्थिति के विरूद्ध लड़ने के लिए प्रयत्नशील होता है और समानता की मनोभूमि पर अपने अधिकारों के प्रति सजग रहकर संघर्षरत होता है, तभी विद्रोह की नींव पड़ती है।"[19]

धूमिल भी इस बात से काफी सहमत नजर आते हैं। उनका मानना है कि ादमी ठण्डा नहीं है, उसमें आग है। बस जरूरत है उठकर तनने की। विद्रोह के लए प्रेरित करता हुआ कवि कहता है -

वक्त सिर्फ़ उसका चेहरा बिगाड़ता है
जो अपने चेहरे की राख
दूसरों की रूमाल से झाड़ता है।
जो अपना हाथ
मैला होने से डरता है
वह एक नहीं ग्यारह कायरों की
मौत मरता है।[20]

सरकार समाजवाद लाने का कोरा प्रयास करती रही, कानून बनाती रही। हंगाई तेजी से बढ़ती रही। मूलभूत जरूरत की चीजों के दाम आसमान छू रहे थे। र्मचारी से लेकर अधिकारी तक भ्रष्टाचार में आकण्ठ मग्न थे। अकर्मण्यता उनकी स-नस में प्रवेश कर चुकी थी। सरकारी तंत्र हर मोर्चे पर विफल नजर आ रहा ा। सरकार पाँच वर्ष तक समाजवाद स्थापित करने की योजनाएँ फाइलों के माध्यम बनाती रहती थी। तभी अगले पंचवर्षीय चुनाव का बिगुल बज जाता था। धूमिल ार-बार होने वाले चुनाव से बेहद क्षुब्ध नजर आते हैं क्योंकि नेताओं के झूठ के लिन्दे इन्ही चुनावों में जनता पर फेंके जाते थे। नेता देश, धर्म, नैतिकता एवं संस्कृति ी दुहाई देकर जनता को मूर्ख बनाते थे। कवि के शब्दों में -

सब-कुछ अब धीरे-धीरे खुलने लगा है
गत-वर्षों के इस दादुर-शोर में
मैंने देखा हर तरफ
रंग- बिरंगे झण्डे फहरा रहे हैं
गिरगिट की तरह रंग बदलते हुए
गुट से गुट टकरा रहे हैं।
वे एक दूसरे से दाँत-किलकिल कर रहे है
वे एक दूसरे को दुर-दुर-बिल-बिल कर रहे है
हर तरफ तरह-तरह के जन्तु हैं
श्रीमान किन्तु हैं
मिस्टर परन्तु हैं
कुछ भोगी
कुछ हिजड़े हैं

कुछ भोगी हैं
तिजोरियों के
प्रशिक्षित दलाल हैं।[21]

देश की चुनाव व्यवस्था पर भी धूमिल ने करारा व्यंग्य किया है। उनकी दृष्टि में आज चुनाव प्रजातंत्र का मजाक बन गया है। समाज में जाति, धर्म, सम्प्रदाय, के नाम पर नफरत पैदा की जा रही है और यह सब देश के नेताओं द्वारा किया जा रहा है जो अपनी रोटी सेंकने के लिए कुछ भी करने को तैयार है। धूमिल का दर्द नेताओं के अतिरिक्त आम आदमियों से भी है जो चुनाव को सारे मर्ज का इलाज मान बैठे हैं। क्षणिक शान्ति के लिए वे चुनाव को अनिवार्य मानते हैं क्योंकि इसी बहाने अपने पड़ोसियों को नीचा दिखा सकेगें। कवि के शब्दों में –

'चुनाव' ही सही इलाज है
क्योंकि बुरे और बुरे के बीच से
किसी हद तक 'कम से कम बुरे को' चुनते हुए
न उन्हें मलाल है, न भय है
न लाज है
दरअस्ल, उन्हें मौका मिला है
और इसी बहाने
वे अपने पड़ोसी को पराजित कर रहे हैं
मैंने देखा कि हर तरफ
मूढ़ता की हरी-हरी घास लहरा रही है।[22]

सुदामा प्रसाद पाण्डेय 'धूमिल' की 'पटकथा' शीर्षक कविता अभिधान की दृष्टि से पूर्णतया संगत है। पटकथा का आशय है चलचित्र की कथा। प्रस्तुत कविता भी कवि के मस्तिष्क में चलचित्र के रील की तरह निरन्तर बढ़ी है।

धूमिल की इस कविता के कथा में प्रबन्धात्मकता नहीं हैं। इसमें कथा-सूत्र अनायास ही बढ़ता गया। कवि अपने समय के पूरे परिवेश को इस काव्य फलक पर चित्रित करने में सफल है। पटकथा को यदि बारिकी से पढ़ा जाये तो इसमें दो मुख्य पात्र लक्षित होते हैं। 'मै' (कवि) और 'मैं' का हमशक्ल-हिन्दुस्तान। दोनों के अपने आत्मलाप हैं जो कवि की मनोदशा को दर्शाते हैं। डॉ0 युद्धवीर धवन ने पटकथा के रचना शिल्प पर विचार करते हुए कहा "पटकथा" की नाटकीयता में पूर्वदीप्ति, पात्र, संवाद व कथन के बीच क्रिया के चार रूप विद्यमान हैं। पूर्वदीप्ति के माध्यम से लेखक ने बहुत लम्बी बात की है।[23] मुक्तिबोध की तरह धूमिल ने अपने समय के यथार्थ

को अभिव्यक्ति देने के लिए कहीं-कहीं फैंटेसी का सहारा लिया है। 'मैं' (कवि) का हमशक्ल 'हिन्दुस्तान' स्वप्न में कवि के सम्मुख आकर अपनी स्थिति का संकेत देता है। कवि की यह फैंटेसी लगभग दो सौ पचास पँक्तियों में है।

कवि ने फैंटेसी के माध्यम से मुक्तिबोध के 'अँधेरे मे' कविता की तरह तत्कालीन सामाजिक परिवेश की भयावहता को रेखांकित किया है। एक ओर सामान्य जनता के स्वप्न चकनाचूर हो रहे हैं और वह बेबस जीवन जीने को मजबूर है, लेकिन नेता वर्ग उसे निरन्तर सब्जबाग दिखा रहा है –

उसकी आवाज में
असंख्य नरकों की घृणा भरी थी
वह एक-एक शब्द चबा-चबाकर
बोल रहा था। मगर उसकी आँख
गुस्से में भी हरी थी
वह कह रहा था –
'तुम्हारी आँखों के चकनाचूर आईनों में
वक्त की बदरंग छायाएँ उलटी कर रही हैं
और तुम पेड़ों की छाल गिनकर
भविष्य का कार्यक्रम तैयार कर रहे हो
तुम एक ऐसी जिंदगी से गुजर रहे हो
जिसमें न कोई तुक है
न सुख है।[24]

खून और आँसू से तर चेहरा
मुस्कराया था। उसकी आँखों का हरापन
उसकी आवाज में उतर आया था
'दुखी मत हो। यही मेरी नियति है।[25]

मेरी नींद टूट चुकी थी
मेरा पूरा जिस्म पसीने में सराबोर था।[26]

धूमिल स्वप्न में भी 'मैं' और 'मैं' के हमशक्ल से लड़ते रहे। स्वप्न भंग होने के बाद उनको लगा कि शायद कुछ बदलाव देश में आया हो। उनका स्वप्नरूपी बदलाव समाज-देश में आया जरूर लेकिन वह परिर्वतन उनके अनुरूप न होकर उससे भी भयानक निकला। समाजवाद के नाम पर दिखावे की कुछ अर्जिया मंजूर भी हुईं। दिखावे के लिए कुछ उच्च अधिकारियों-मंत्रियों के तबादले भी हुए लेकिन ये

तबादले जनता को धोखा देने के लिए हुए क्योंकि जिनके तबादले हुए वे तो नहले से दहले कि स्थिति में आ गये। कवि के शब्दों में -

हाँ यह सही है कि कुर्सियाँ वही हैं
सिर्फ, टोपियाँ बदल गयी हैं और -
सच्चे मतभेद के अभाव में
लोग उछल-उछलकर
अपनी जगहें बदल रहे हैं।
चढ़ी हुई नदी में
भरी हुई नाव में
सतहों पर हलचल है
नये-नये नारे हैं
पानी ही पानी है
पर कीचड़
खामोश है।[27]

'समाजवाद' नेताओं की जुबान का तकिया कलाम बन चुका था। हर घोषणा पत्र में समाजवाद, समन्वयवाद गरीबी हटाओ और सब को रोटी का वादा किया जा रहा था, लेकिन होता ठीक उसके विपरीत था। जनता, खासकर युवा वर्ग शासन के इस दोहरी नीति से ऊब चुका था। उसका धैर्य जवाब दे रहा था और वह विद्रोह की तरफ बढ़ने लगा था। संविधान के प्रति बढ़ते उस क्रोध की उपज है नक्सलबाड़ी आन्दोलन। धूमिल के शब्दों में -

एक ही संविधान के नीचे
भूख से रिरियाती हुई फैली हथेली का नाम
'दया' है
और भूख में
तनी हुई मुठ्ठी का नाम
नक्सलबाड़ी है
मुझसे कहा गया कि संसद
देश की धड़कन को
प्रतिबिम्बित करने वाला दर्पण है
जनता को
जनता के विचारों का नैतिक समर्पण है
लेकिन क्या यह सच है?[28]

धूमिल 'पटकथा' के प्रारम्भ में जहाँ उत्साहित नजर आते हैं कि 'अब कोई भूखा नहीं 'रहेगा' वहीं उसके अन्त तक पहुँचते-पहुँचते, देश की व्यवस्था, संविधान, झूठे समाजवाद, कानून, जनतंत्र, उच्च वर्ग, पूजीपतियों की शक्ति, अपने ही देश के नेताओं से क्षुब्ध स्वराज्य के उड़ते मखौल, गाँधी के टूटते सपने, फाइलों में कैद होती समाजवाद की तस्वीर, समाज में बढ़ती ईष्या, नफरत, विद्रोह, कानून की उड़ती धज्जियों आदि जैसे अनेक विडम्बनाओं और विसंगतियों से लड़ते-लड़ते थक जाते है। अपने से ही सवाल करते हैं लेकिन उन सवालों का उनके पास कोई उत्तर नहीं है। कवि को लगता है हर तरफ अन्धकार है, सन्नाटा है। उनकी आवाज सुनने वाल वाला कोई नहीं है। स्वतंत्रता के पूर्व और स्वतंत्रता के बाद उन्हें किसी प्रकार का अन्तर नजर नहीं आ रहा है। अपनी व्यथा को व्यक्त करता हुआ कवि 'पटकथा' के समापन पर कहता है –

मैं अक्सर अपने-आपसे सवाल
करता हूँ जिसका मेरे पास
कोई उत्तर नहीं है
और कोई आज तक –
नींद और नींद के बीच का जंगल काटते हुए
मैंने कई रातें जागकर
गुज़ार दी हैं
हफ्तों पर हफ्ते तह किये हैं। ऊब के
निर्मम अकेले और बेहद अनमने क्षण
जिये हैं।
मेरे सामने वही चिरपरिचित अन्धकार है
संशय की अनिश्चयग्रस्त ठण्डी मुद्राएँ हैं
हर तरफ
शब्दभेधी सन्नाटा है।
दरिद्र की व्यथा की तरह
उचाट और कूँथता हुआ घृणा में
डूबा हुआ सारा का सारा देश
पहले की ही तरह आज भी
मेरी कारागार है।[29]

संक्षेप में 'पटकथा' समकालीन राजनैतिक और सामाजिक परिवेश को चित्रित

करने में पर्याप्त सफल है। स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कवियों की लम्बी कविताओं के मध्य धूमिल की पटकथा ने अपनी सहज पहचान बना ली है।

सन्दर्भ

1. अनिवार्यता और सुविधा के बीच कुछ कविताएँ-आलेख-शीर्षक त्रैमासिक-सन् 1981 पृ. 94
2. समकालीन कविता की पहचान डॉ. युद्धवीर धवन, पृ. 13
3. वही, पृ. 130
4. संसद से सड़क तक, धूमिल, पृ. 98
5. वही, पृ. 99
6. वही, पृ. 101
7. वही पृ. 102
8. वही पृ. 102
9. वही पृ. 103
10. वही पृ. 101
11. वही पृ. 105
12. वही पृ. 126-127
13. वही पृ. 104
14. वही पृ. 120
15. वही पृ. 127
16. वही पृ. 126
17. लम्बी कविताएँ : वैचारिक सारोकार - डॉ. बलदेव वंशी, पृ 86
18. संसद से सड़क तक, पृ. 126
19. समकालीन लम्बी कविता की पहचान - डॉ. युद्धवीर धवन, पृ. 48
20. संसद से सड़क तक-धूमिल, पृ. 114
21. वही पृ. 117-118
22. संसद से सड़क तक, धूमिल, पृ. 114
23. समकालीन लम्बी कविताओं की पहचान - डॉ. युद्धवीर धवन, पृ. 56
24. संसद से सड़क तक-धूमिल, पृ. 112
25. वही पृ. 121
26. वही पृ. 112
27. वही पृ. 125
28. वही पृ. 127
29. वही, पृ0 128

सप्तम अध्याय

उपसंहार

हिन्दी साहित्य में यदि परिवर्तनशील और विचारों से लवरेज कवियों की बात की जाय तो कबीर, निराला, नागार्जुन, मुक्तिबोध, राजकमल चौधरी और धूमिल निश्चित रूप से शामिल होंगे। कबीर ने पहली बार बिना किसी की परवाह किये साहित्य में विद्रोही तेवर दिखाया। आधुनिक युग में निराला या फिर नागार्जुन ने वो काम किया। नागार्जुन तो जनमानस के लिए सत्ता से सदैव दो-दो हाथ करते नजर आते हैं। भारत में आपातकाल की घोषणा नागार्जुन की दृष्टि में उचित नहीं थी, इसीलिए उन्होंने उसका विरोध किया और अपनी लेखनी से आग उगलते रहे। नागार्जुन के पद चिह्नों पर आगे चलने का काम राजकमल चौधरी, सौमित्र मोहन, धूमिल आदि कवियों ने किया और व्यंग्य के स्थान पर सीधे प्रहार को वरीयता दी। निश्चित रूप से समकालीन कविता के पुरोधा कवियों में इनका नाम लिया जाता है।

समकालीन कविता में सुदामा पाण्डेय 'धूमिल' एक अदम्य जिजीविषा और सर्जनात्मक ऊर्जा के कवि के रूप में जाने जाते हैं। इस युवा कवि ने अपनी अल्पायु में ही अपने विद्रोही तेवर से साहित्य और समाज को झकझोर कर रख दिया। उनका पहला कविता संग्रह सन् 1972 में 'संसद से सड़क तक' प्रकाशित हुआ। यही उनके जीवन का अन्तिम प्रकाशित संग्रह भी था, लेकिन धूमिल में जहाँ एक ओर समाज को देखकर पीड़ा एवं दहशत है वहीं दूसरी ओर खीझ, छटपटाहट और आक्रोश भी है। अपने रचना कर्म के प्रारम्भिक दौर में धूमिल के मन में द्वन्द्वात्मक संवेग था कि सामाजिक विसंगतियों के विच्छेदन में कविता कितनी और कैसे कारगर हो सकती है।

उनके समकालीन कुछ कवि जहाँ कविता के मंच पर कोरी बयानबाजी करते रहे वही धूमिल ने कविता को अनुभूति के सही-सार्थक धरातल पर उतारा। धूमिल की कविताओं को पढ़ने के बाद प्रथम दृष्टया यह धारणा बनती है कि -

क्या आजादी तीन थके हुए रंगों का नाम है
जिन्हें एक पहिया ढोता है
या इसका कोई खास मतलब है?

धूमिल की इस प्रश्नात्मक मुद्रा से ही स्पष्ट है कि वे इसका उत्तर चाहते हैं और शीघ्र उत्तर भी खोज लेते हैं-

और सहसा मैंने पाया कि खुद अपने सवालों के
सामने खड़ा हूँ और उस मुहावरे को समझ गया हूँ
जो आजादी और गांधी के नाम पर चल रहा है
जिससे न भूख मिट रही है, न मौसम
बदल रहा है।[2]

समकालीन कविता के कवियों में सरकार और पूंजीपतियों के विरूद्ध एक अजीब बेचैनी और कड़वाहट देखने को मिलती है। समाज में जो अवमूल्यन, मिथ्यालाप हो रहा है उससे छुटकारा दिलाना इन कवियों ने अपना दायित्व समझा। नयी कविता जहाँ खीझ, कुंठा, क्षोभ, अवसाद आदि से राजनीतिक तेवर ग्रहण कर रही थी वहीं समकालीन कविता में सपाट-बयानी अपेक्षाकृत अधिक हो गयी थी, फिर भी वह समसामयिक एवं राजनीतिक यथार्थबोध के प्रति अधिक सचेष्ट दिखाई देती है। धूमिल भारत के जनतंत्र को समझने में देर नहीं करते। उन्हें लगता है कि अपने यहाँ का जनतंत्र 'सिर कटे मुर्ग' की भाँति है जो छटपटाता तो है लेकिन उसके बस में कुछ नहीं है -

सिरकटे मुर्ग की तरह फड़कते हुए
जनतंत्र में
सुबह
सिर्फ, चमकते हुए रंगों की चालबाजी है
और यह जानकर तुम चुप रहोगे।
या शायद वापसी के लिए पहल करने वाले
आदमी की तलाश में
एक बार फिर
तुम लौट जाना चाहोगे मुर्दा इतिहास में।[3]

इतना ही नहीं यह वास्तव में एक दहशत है जिसकी हत्या हर क्षण होती रहती है धूमिल के शब्दों में -

जनतंत्र
जिसकी रोज सैकड़ों बार हत्या होती है
और हर बार
वह भेड़िये की जुबान पर जिन्दा है।[4]

धूमिल का मानना है कि 'जनतंत्र' महज एक धोखा है। देशभक्ति रोटी का टुकड़ा नहीं जिसे किसी भाषा में देश का नाम लिखकर खिला दिया जाये और वह

देशभक्त बन जायेगा। देशभक्ति वह जुनून है जो आत्मा में प्रविष्ट करती है। जब तक व्यक्ति अपने कर्म, कर्तव्य और मेहनत से संघर्ष करने को तैयार नहीं होगा तब तक वह देश को, अपने को धोखा देता रहेगा। आज नेता-पूँजीपति मदारी की भाँति देश-समाज को नचा रहे हैं और आम आदमी महज तमाशा बनकर रह गया है। कोई आगे आने को तैयार ही नहीं है। दोषारोपण आज खीझ बन गया है-

दरअस्ल, अपने यहाँ जनतंत्र
एक ऐसा तमाशा है
जिसकी जान
मदारी की भाषा है।[5]

धूमिल एक तरफ जहाँ राजनीति के विकृत रूप से घृणा करते हैं वहीं दूसरी ओर समाज की अव्यवस्था से भी तिलमिलाये हुए हैं। अतीत मरता नहीं लेकिन उसे रूढ़िगत परम्परा बना दी जाये तो इंसान का दम घुटने लगता है। सत्तर के बाद का दशक दिन प्रतिदिन मानव को विनाश की ओर अग्रसर करने लगा। विज्ञान और पश्चिमी सभ्यता भारत पर हावी होने लगी। सारे आदर्श खोखले नजर आने लगे। कवि ने अपने साहित्य के माध्यम से तनावग्रस्त एवं घुटनशील मानव को सही राह दिखाने का प्रयास किया है। धूमिल जितने ईमानदार, कर्तव्यनिष्ठ व्यक्तिगत जीवन में थे उतने ही साहित्य में भी। सत्य और जीवन-यथार्थ से संबलित उनका काव्य कुन्दन की भाँति दीप्त है। धूमिल में उत्कृष्ट जिजीविषा और अपार ऊर्जा थी जो उनकी मृत्युशैय्या पर भी देखने को मिलती है। लखनऊ के मेडिकल कालेज में ब्रेन ट्यूमर होने पर वे भर्ती थे। जीवन समाप्ति की कगार पर खड़ा था फिर भी सोच में तनिक बदलाव नहीं था। सत्य को स्थापित करते हुए अपनी अन्तिम कविता में कहते हैं -

लोहे का स्वाद
लोहार से मत पूछो
उस घोड़े से पूछो
जिसके मुँह में लगाम है।[6]

ऐसा अदम्य साहस विरले कवियों में देखने को मिलता है। धूमिल यदि नेता, पूँजीपति और तथाकथित समाजसेवियों को आत्मावलोकन के लिए ललकारते हैं तो स्वयं भी आत्मान्वेषी की भूमिका में नजर आते हैं। जीवन के हर पड़ाव पर उन्होंनें ईमानदारी दिखाई। 'खूशबू के शिलालेख' संग्रह की कविता के माध्यम से वे समझाने का प्रयास करते हैं कि किसी कवि के आन्तरिक व्यक्तित्व को हम भले न समझ पाये लेकिन उसके व्यक्तित्व को काफी हद तक उसकी कविताओं के माध्यम से समझा जा सकता है। उन्हीं के शब्दों में-

चाहे तो यह अपवाद कह सकते हो
कवि के बारे में
उसका समूचापन
उसके दिखने से ज्यादा उसके
लिखने में आता है।[7]

धूमिल अपना मूल्यांकन करते हुए 'पराजय बोध' कविता में एक विराट दृष्टि से पाठकों को अवगत कराते हैं –

मेरे हाथ काले हैं
मेरी आंखों में जाले हैं
मेरी जुबान चुप है
होंठों पर ताले हैं
टखनों में जाड़ा है।
मेरा जीवन लार टपकाती हुई नेकर का नाड़ा है।
मुझे मेरे दर्द ने पिछाड़ा है।[8]

धूमिल का साहित्य मानव मूल्यों का साहित्य है। वे भीड़वादी नहीं समाजवादी साहित्यकार हैं। वे समाज का मनोविश्लेषणत्मक अध्ययन करना चाहते हैं। उनका मानना है कि व्यक्ति अपने अस्तित्व को सदैव बचाकर रखे। यदि अस्तित्व समाप्त हो गया तो वह मूल्यहीन बनकर रह जाता है।

धूमिल का साहित्य उग्र एवं तीखेपन का साहित्य है। उनके प्रकाशित तीनों संग्रहों में इस बात को प्रमुखता से देखा जा सकता है। व्यक्तिगत जीवन में भी धूमिल का स्वभाव उस नारियल की भाँति था जो ऊपर से सख्त और अन्दर से नरम है। वे कभी भी अव्यवस्था के पक्ष में खड़े दिखाई नहीं पड़ते हैं। जहाँ एक ओर वे अव्यवस्था, विडम्बना और उत्पीड़न से लड़ते नजर आते हैं वहीं दूसरी ओर ग्राम्य संस्कृति एवं गंवई रंग उनके साहित्य में भरा पड़ा है। 'संसद से सड़क तक' जहां एक ओर शहरी संस्कृति पर कुठाराघात करती है, वहीं 'कल सुनना मुझे' में शहरी और ग्रामीण संस्कृति का लेखा-जोखा प्रस्तुत है। धूमिल को हिन्दी साहित्य में पहचान दिलाने वाले वाले डॉ0 नामवर सिंह ने भी उन्हें गंवई कवि के रूप में स्थापित करते हुए कहा है– 'दरअसल कवि धूमिल की शक्ति का उत्स ही उनका गंवई अनुभव और किसानी संस्कार है। वह दुनिया को किसान की दृष्टि से ही देखते हैं। इसीलिए उनकी परिभाषाएं, बिम्ब तथा मुहावरे आदि अनायास ही किसानी दुनिया से आते हैं.... इसी किसानी दृष्टि के द्वारा धूमिल ने हिन्दी कविता को एक जीवन्त तथा नयी भाषा दी है,

केवल शब्द नहीं, बल्कि वाक्य विन्यास और बातचीत का लबो-लहजा भी.......।’[9] धूमिल के साहित्य का विवेचन भी इस बात की ओर स्पष्ट संकेत करता है कि जिस कथा को उन्होंनें उठाया है वह जिन्दगी के जद्दोजहद से उत्पन्न हुआ है। समकालीन साहित्य में धूमिल निश्चित रूप से जन से जीवन तक की समस्त छोटी बड़ी लड़ाईयों को अपने व्यक्तित्व एवं कृतित्व के माध्यम से लड़ते नजर आते हैं। हरिचरण शर्मा के शब्दों में “असल में ‘धूमिल’ में जिन्दगी का अहसास और उससे सीधी टकराहट काफी गहरी है। उनकी कविताओं का कथ्य जिन्दगी के बीच से उसमें डूबकर उठाया गया कथ्य है। यही कारण है कि इसमें समकालीन सन्दर्भ, मानव-स्थिति और बिल्कुल ताजा घटनाओं पर की गयी प्रतिक्रिया भी समायी हुई है। यह अच्छी बात है कि उनकी कविता में किसी प्रकार का कोई विलास नहीं, न जिन्दगी का, न कल्पना का और न भाषा-शैली का, जो है वह सब एक बेबाक सच्चाई और जीवन की अंसगतियों-संगतियों और रोजमर्रा के सन्दर्भों की कड़ी पहचान है।”[10]

धूमिल के साहित्य का विश्लेषण करते समय कई ऐसे तथ्य सामने आते हैं जो उन्हें विशिष्टता के शिखर पर खड़ा करते हैं। पाठक वर्ग उन्हें समकालीन कविता का एक अदम्य साहसी, विद्रोही एवं भाषा के एक प्रयोगधर्मी कवि के रूप मानने को विवश हो जाता है। धूमिल मार्क्सवादी विचारधारा में पूरी तरह जकड़े हुए नजर नहीं आते। आवश्यकतानुसार वे वादों के घेरे में घिरते और निकलते रहते हैं। धूमिल ने जो कुछ कविताओं में व्यक्त किया है उसे अनुभव के धरातल पर पहले ‘सही सार्थक’ का ढाँचा प्रदान करते हुए आत्मसात् किया है। वास्तव की सही पहचान में वह आँसू और हाय की स्थिति विवशता में देखता है, पर इसे ‘आग’ (लोहा क्रान्ति) में परिणत करना चाहता है। धूमिल की प्रतिबद्धता नारों तक सिमटी ही नहीं है जैसा कुछ समीक्षक मानते हैं, न ही उसे मार्क्सवाद तक सीमित किया जाना चाहिए। प्रतिबद्धता उसकी ईमानदारी, एहसास, समझ एवं कार्याति में द्रष्टव्य है। इसलिए कहा जा सकता है कि समकालीन कविता के अविस्मरणीय कवियों में धूमिल का नाम है।

धूमिल ने जो कुछ अनुभव किया उसे अपने साहित्य के माध्यम से व्यक्त किया। वे अपने साहित्यिक जीवन में प्रारम्भ से लेकर अन्त तक ‘सही सार्थक वक्तव्य’ को ही महत्व देते हैं। अन्य समकालीन कवियों से उनकी दृष्टि सर्वथा नवीन है। उनकी प्रतिबद्धता सिर्फ नारों तक सीमित नहीं है जैसा कि कुछ समीक्षक मानते हैं। धूमिल का सही मूल्यांकन करने के लिए ‘वादों’ के ‘फ्रेम’ को तोड़ना होगा। सार्थक बहस करनी होगी। तभी उनकी उपादेयता सिद्ध हो पायेगी। धूमिल समकालीन कविता के अविस्मरणीय कवि धूमिल हैं।

सन्दर्भ

1. संसद से सड़क तक-धूमिल पृ. 10
2. वही पृ. 16
3. वही।
4. वही पृ. 44
5. वही पृ. 105
6. कल सुनना मुझे पृ. 80
7. चीजों का रूप (खुशबू के शिलालेख कविता संग्रह) भवानी प्रसाद मिश्र
8. कल सुनना मुझे-धूमिल पृ. 80
9. आजकल 1980 अंक 11 पृ. 8
10. हरिचरण शर्मा, पुनश्च (जयपुर : अनुपम प्रकाशन 1975 पृ. 276)
11. समकालीन बोध और धूमिल का काव्य - डॉ0 हुकुमचन्द्र राजपाल, पृ. 208

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. आलोचना, अंक 33
2. आधुनिकता बोध और आधुनिकीकरण – डॉ0 रमेश कुन्तल मेघ
3. आधुनिकता बोध – रामधारी सिंह दिनकर
4. कटघरे का कवि धूमिल – डॉ0 ग0तु0 अल्टेकर पंचशील प्रकाशन, जयपुर, सन् 1984
5. काव्य बिम्ब – डॉ0 नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली, सन् 1990
6. जनवादी कविता का संघर्ष – डॉ0 शिवशंकर मिश्र, बिहार ग्रंथ कुटीर प्रकाश, पटना, 1984
7. तार सप्तक द्वितीय संस्करण – अज्ञेय, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली
8. धर्मयुग पत्रिका, 1 जुलाई 1965
9. धूमिल का कविता संसार और पटकथा की भूमिका – डॉ0 अतुलवीर अरोड़ा, पत्रिका परिशोध पंजाब विश्वविद्यालय, 23वाँ अंक।
10. धूमिल की काव्य यात्रा – डॉ0 मंजू अग्रवाल, अनामिका प्रकाशन, नया वैरहना, इलाहाबाद, सन् 1986
11. धूमिल और उनका काव्य संघर्ष – डॉ0 ब्रह्मदेव मिश्र, लोक भारती प्रकाशन, सन् 1987
12. नया प्रतीक, फरवरी 1976, सन् 1978
13. नयी कविता में युग बोध – डॉ0 मंजू दुबे, अनुपम प्रकाशन, अशोक राजपथ पटना, सन् 1987
14. नई कविता में विम्ब विधान – मृदुल जोशी, कुसुम प्रकाशन, मुजफ्फरनगर (उ0प्र0), सन् 1992
15. नये कवि एक अध्ययन (भाग तीन) – डॉ0 संतोष कुमार तिवारी, भारतीय ग्रंथ निकेतन, नई दिल्ली, सन् 1991
16. नई कविता – नन्ददुलारे वाजपेई प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, 1997
17. भारत का संवैधानिक विकास और स्वाधीनता संघर्ष – डॉ0 कुसुम कश्यप
18. मुक्तिबोध की काव्यभाषा – डॉ0 सनत कुमार, चिन्तन प्रकाशन, कानपुर, सन् 2000

19. लम्बी कविताएं : वैचारिक सरोकार – डॉ0 बलदेव वंशी
20. समकालीन कविता की भूमिका – डॉ0 विश्वंभर नाथ उपाध्याय, डॉ0 मंजुल उपाध्याय, दि मैकमिलन कंपनी ऑफ इण्डिया लिमिटेड, नई दिल्ली, सन् 1976
21. समकालीन कविता और धूमिल – डॉ0 मंजुला उपाध्याय, ग्रन्थम प्रकाशन, कानपुर 1980
22. समकालीन कविता की प्रवृत्तियाँ – डॉ0 रामकली सर्राफ, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी, सन् 1997
23. समकालीन कविता – सं0 राधेश्याम बन्धु, समग्र चेतना, गंगा विहार कानपुर, सन् 1985
24. संघर्ष, परिवर्तन और साहित्य – डॉ0 नरेन्द्र मोहन
25. साठोत्तरी हिन्दी कविता की वस्तु योजना – डॉ0 बादाम सिंह रावत, गिरनार प्रकाशन घिलाजीगंज, महेसना गुजरात, सन् 1984
26. समकालीन लम्बी कविता की पहचान – डॉ युद्धवीर धवन, संजीव प्रकाशन, 49/4 थाने राहर कुरूक्षेत्र, सन् 1987
27. समकालीन हिन्दी कविता – विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, सन् 1982
28. साठोत्तरी हिन्दी कविता की प्रवृत्तियाँ – डॉ0 नील कुसुम, किताब महल, इलाहाबाद, सन् 1987
29. सर्वेश्वर का कविता लोक – डॉ0 महेश दिवाकर, सुमन प्रकाशन, नई दिल्ली, सन् 1994
30. चालीसोत्तर हिन्दी कविता के हीरक हस्ताक्षर – डॉ0 दुर्गा प्रसाद ओझा, भवदीय प्रकाशन, फैजाबाद, सन् 2002
31. धूमिल की श्रेष्ठ कविताएँ – सं0 ब्रह्मदेव मिश्र, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, सन् 2009
32. उत्तर आधुनिकतावाद : विभ्रम और यथार्थ – डॉ0 रवि श्रीवास्तव
33. आज के जमाने में मार्क्सवाद का महत्व – एजाज अहमद, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, सन् 1966
34. इतिहास बोध – लाल बहादुर वर्मा, अंक 38
35. काव्यालंकर – भामह

36. प्रिंसिपल ऑफ लिटरेरी क्रिटिसिज्म– आई0ए0 रिचर्डस
37. जायसी की भाषा – डॉ0 प्रभाकर शुक्ल, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ
38. देव के काव्य में अभिव्यक्ति विधान – डॉ0 राज बुद्धिराजा
39. काव्य बिम्ब और छायावाद – डॉ0 सुरेन्द्र माथुर
40. चिन्तामणि (भाग एक) रामचन्द्र शुक्ल
41. महादेवी के काव्य में बिम्ब विधान – डॉ0 सुधा श्रीवास्तव
42. जनवादी कविता संवेदना और शिल्प – सुरेश सिंह
43. समकालीन बोध और धूमिल का काव्य – डॉ0 हुकुम चन्द्र राजपाल, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2012
44. हिन्दी की लंबी कविताओं का आलोचना पक्ष – डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद सिंह, राजकमल प्रकाशन दिल्ली, सन् 2011

उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ

साहित्य सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

पुस्तक का नाम	लेखक का नाम	मूल्य
महाकवि अमीर खुसरो	अनु. अब्दुल सत्तार	100.00
कबीर	डॉ. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी	40.00
भुवनेश्वर : व्यक्तित्व एवं कृतित्व	सम्पा. राजकुमार शर्मा	90.00 (60%)
सुब्रह्मण्यम भारती	सम्पा. डा. एन. सुन्दरम	165.00 (60%)
साहित्य मनीषी आचार्य रामचन्द्र शुक्ल	डा. रामचन्द्र तिवारी	60.00
भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र का जीवन चरित्र	राधा कृष्ण दास	48.00
राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन	सम्पा स्व. श्री कमलापति मिश्र	125.00 (60%)
हरिश्चन्द्र	बाबू शिवनन्दन सहाय	100.00
बंशीधर शुक्ल रचनावली	सम्पा. डॉ. श्यामसुन्दर मधुप	378.00 (60%)
आचार्य किशोरीदास वाजपेई	सम्पा. डा. मंजु लता तिवारी	200.00 (60%)
गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही'	सम्पा. डॉ. लक्ष्मीशंकर मिश्र 'निशंक'	165.00 (60%)
गोस्वामी तुलसीदास	डॉ. रामचन्द्र तिवारी	50.00
रामचंद्र शुक्ल	सम्पा. प्रो. सत्यदेव मिश्र	15.00
राष्ट्रकवि सोहन लाल द्विवेदी	डॉ. राष्ट्रबन्धु	40.00
चंदवरदाई	डॉ. सुमन राजे	50.00
कविवर सुमित्रानन्दन पंत	डॉ. सुरेश चन्द्र गुप्त	52.00
कथाकार यशपाल	डॉ. मनमोहन सहगल	70.00
सुभद्रा कुमारी चौहान	डॉ. प्रतीक मिश्र	55.00
भगवती चरण वर्मा : एक व्यक्तित्व-चित्र	ज्ञान चन्द्र जैन	70.00
अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध'	डॉ. कन्हैया सिंह	43.00
मैथिलीशरण गुप्त	डॉ. प्रभाकर शुक्ल	50.00
आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी	डॉ. रामेन्द्र पाण्डेय	50.00
सेनापति	डॉ. अनन्त राम मिश्र 'अनन्त'	50.00
गुरु नानक देव	डॉ. मनमोहन सहगल	90.00
लक्ष्मीकांत वर्मा	डॉ. राजकुमार शर्मा	140.00
विजय सिंह 'पथिक'	राजकुमार भाटी	77.00
महादेवी वर्मा	डॉ. उपेन्द	75.00
राष्ट्रकवि दिनकर	डॉ. यतीन्द्र तिवारी	65.00

सम्पर्क सूत्र

निदेशक

उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान

राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन हिन्दी भवन

6, महात्मा गांधी मार्ग, लखनऊ - 226001

ISBN : 978-93-82175-75-9

मूल्य रु. 155=00